₹१००/- वार्षिक

दिव्य जीवन

संसार में दुःख सबसे बड़ा गुरु है। दुःख, कष्ट, गरीबी, परेशानी, रोग आदि से मनुष्य प्रतिदिन बहुत उपयोगी पाठ सीखता है। दुःख आँख खोल देने वाला है। गुप्त रूप से वह आशीर्वाद ही है। वह भगवान् का मधुर सन्देश लाता है। कुन्ती देवी ने कहा—"हे कृष्ण! सतत तुम्हारा स्मरण बना रहे, इसके लिए सदा मुझे विपत्तियाँ प्राप्त होती रहें। यदि सुख मिल गया, तो सम्भव है, मैं तुम्हें भूल जाऊँ।" भक्तों को दुःख में आनन्द आता है। वे विपत्ति का सदा स्वागत करते हैं।

—स्वामी शिवानन्द

मई २०२१

विश्व-प्रार्थना

हे स्नेह और करुणा के आराध्य देव!
तुम्हें नमस्कार है, नमस्कार है।
तुम सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान् और सर्वज्ञ हो।
तुम सच्चिदानन्दघन हो।
तुम सबके अन्तर्वासी हो।

हमें उदारता, समदर्शिता और मन का समत्व प्रदान करो।
श्रद्धा, भक्ति और प्रज्ञा से कृतार्थ करो।
हमें आध्यात्मिक अन्तःशक्ति का वर दो,
जिससे हम वासनाओं का दमन कर मनोजय को प्राप्त हों।
हम अहंकार, काम, लोभ, घृणा, क्रोध और द्वेष से रहित हों।
हमारा हृदय दिव्य गुणों से परिपूरित करो।

हम सब नाम-रूपों में तुम्हारा दर्शन करें।
तुम्हारी अर्चना के ही रूप में इन नाम-रूपों की सेवा करें।
सदा तुम्हारा ही स्मरण करें।
सदा तुम्हारी ही महिमा का गान करें।
तुम्हारा ही कलिकल्मषहारी नाम हमारे अधर-पुट पर हो।
सदा हम तुममें ही निवास करें।

—स्वामी शिवानन्द

सदाचारी बनें

पुण्य-कर्मों के द्वारा सुख तथा पाप-कर्मों के द्वारा दुःख होता है। कर्मों के फल अवश्यमेव मिलते हैं। कर्म के बिना कोई भी फल नहीं मिलता। सदाचार ही ईश्वर के चरण-कमलों की प्राप्ति का साधन है। सदाचार के द्वारा सब-कुछ प्राप्त किया जा सकता है।

मन, वचन तथा कर्म से किसी प्राणी की हिंसा न करें। दयालु तथा दानशील बनें। अपने विचारों में उदार बनें। सतत सत्यपरायण रहें। क्रोध, घृणा तथा द्वेष से मुक्त रहें।

अपने गुरुजनों तथा वरिष्ठजनों के प्रति आदर तथा भक्ति रखें। श्रद्धा एवं सच्चाई के साथ देवों की पूजा करें। कपटी लोगों के प्रति शान्त रहें। आप इस लोक तथा परलोक में बहुत यश और पुण्य भोगेंगे।

—स्वामी शिवानन्द

दिव्य जीवन

Vol. XXXII	मई २०२१	No. 2

प्रश्नोपनिषद्

प्रथम प्रश्न

कबन्धी एवं पिप्पलाद

संवत्सरो वै प्रजापतिस्तस्यायने दक्षिणं चोत्तरं च।
तद्ये ह वै तदिष्टापूर्ते कृतमित्युपासते ते चान्द्रमसमेव लोकमभिजयन्ते।
त एव पुनरावर्तन्ते तस्मादेत ऋषयः प्रजाकामा दक्षिणं प्रतिपद्यन्ते।
एष ह वै रयिर्यः पितृयाणः ।।९ ।।

९. संवत्सर ही प्रजापति है, उसके दक्षिण एवं उत्तर दो अयन हैं। जो मनुष्य इष्टापूर्त कर्ममार्ग का अवलम्बन करते हैं, वे चन्द्रलोक पर ही विजय पाते हैं। वे पुनः आवागमन को प्राप्त होते हैं, अतः प्रजाकाम (सन्तानेच्छु) ये ऋषि दक्षिण मार्ग को प्राप्त होते है । (इस प्रकार) जो पितृयाण है, वही रयि है ।

(पूर्व-अंक से आगे)

महागुरुवर्णमातृकास्तोत्रम्

MAHAGURU-VARNA-MATRIKASTOTRAM

ज्ञानभास्कर महामहोपाध्याय श्री एस. गोपाल शास्त्री

वश्याक्षं वामगात्रप्रसृमरमहसं विश्रुतं वीतमोहं
वन्द्यं विश्वैश्च वेदागमनिरतमतिं वैद्यराजं भवार्तेः।
वंशीपाण्यंघ्रिनिष्ठं विमलमुनिवृतं श्रीशिवानन्दमूर्तिम्
विद्यासिद्ध्यै च शुद्ध्यै गुणसुरभिसुमस्रग्धरं भावयेऽहम् ।।२७।।

२७. पवित्रता एवं ज्ञान की प्राप्ति हेतु मैं सदैव गुरुदेव श्री शिवानन्द जी महाराज का भक्तिपूर्वक ध्यान करता हूँ जो इन्द्रियजयी हैं, जिनकी देह दिव्य प्रकाश से विभासित है, जो विश्वविख्यात हैं, मोहशून्य हैं, सर्ववन्दित हैं, जिनकी बुद्धि वेद-शास्त्रों में प्रतिपादित सत्य के गहन चिन्तन में निरन्तर संलग्न है, जो भवरोग के उपचार में प्रवीण वैद्यराज हैं, जिन्होंने मुरलीधर भगवान् श्री कृष्ण के पावन चरणकमलों का आश्रय ग्रहण किया है, जो सदैव पवित्रहृदयी सन्तवृन्द से घिरे रहते हैं तथा जो सद्गुणों की सुरभित माला से सुशोभित हैं।

शक्तायाखिलभक्तदुःखशमने शास्त्रे शठानां सदा
शिक्षाधूतमनोमलाय शुभशीलाढ्याय शुद्धात्मने।
शूरायान्तरशत्रुसंघदमने शोकाद्रिदम्भोलये
शौचाढ्याश्रितशंकराय गुरवे भूयो नमः कुर्महे ।।२८।।

२८. जो समस्त भक्तों के दुःखों का नाश करने तथा दुष्टजनों को अनुशासित करने में समर्थ हैं, जिनका मन सतत साधनाभ्यास से पवित्र हो गया है, जो दिव्य गुणों से सम्पन्न हैं, पावनहृदयी हैं, जिन्होंने समस्त आन्तरिक शत्रुओं अर्थात् दुर्गुणों को नष्ट कर दिया है, जो अपने आश्रित जनों के कष्ट-शोक रूपी पर्वत को चूर्ण करने वाले वज्र के समान हैं तथा जो उन्हें सब प्रकार की सुख-समृद्धि प्रदान करते हैं, ऐसे श्री गुरुदेव को बारम्बार प्रणाम है।

(क्रमशः)

(अनुवादिका : स्वामी गुरुवत्सलानन्द माता जी)

बुद्ध पूर्णिमा सन्देश

भगवान् बुद्ध का महाप्रस्थान

सद्गुरुदेव श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज

इस भारत-भूमि में भगवान् बुद्ध को अवतरित हुए २५०० वर्ष व्यतीत हो चुके हैं, परन्तु उनका महान् सन्देश आज उससे भी अधिक प्रासंगिक है जितना उनके जीवन-काल में था। बौद्ध धर्म में हम दर्शन, नीति-शास्त्र, धर्म एवं मनोविज्ञान के सम्मिश्रण से बनी एक ऐसी व्यापक विचारधारा को पाते हैं जिसका उद्देश्य मानवीय स्वभाव की गहनतम आवश्यकताओं एवं आकांक्षाओं की पूर्ति करना है; यह एक ऐसा दर्शन है जो हमारे जटिल व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन के प्रत्येक पक्ष के लिए उपयुक्त है। भगवान् बुद्ध मानव को सदाचार का पथ दिखाने, उसकी भ्रान्ति एवं दु:ख का नाश करने हेतु धरा पर अवतरित हुए।

परोपकारिता एवं मानवतावाद विश्व के सभी धर्मों के मुख्य तत्त्व हैं। परन्तु भगवान् बुद्ध की परोपकारिता, मानवतावाद एवं सेवा भाव वैश्विक धार्मिक इतिहास में अनुपमेय है। उनका मानवतावाद सर्वाधिक श्रेष्ठ एवं महान् है। भगवान् बुद्ध द्वारा अहिंसा एवं वैश्विक प्रेम की आधारशिला पर निर्मित मानवतावाद का सुदृढ़ भवन ही वस्तुत: उनकी सर्वोच्च महिमा का द्योतक है। शान्ति के मूर्तिमन्त स्वरूप, भगवान् बुद्ध ने अहिंसा एवं मैत्री का सन्देश दिया। उनके नैतिक उपदेश का मुख्य तत्त्व वैश्विक प्रेम ही है जिस पर मानवतावाद का भव्य भवन निर्मित किया गया है।

''यह (वैश्विक प्रेम) प्रारम्भ में श्रेष्ठ है, मध्य में श्रेष्ठ है तथा अन्त में श्रेष्ठ है।'' इन शब्दों द्वारा भगवान् बुद्ध ने आनन्द को अपने उपदेशों का सारतत्त्व बताया। उनका अपना जीवन भी इन शब्दों का सुन्दर प्रमाण प्रस्तुत करता है। भगवान् बुद्ध के जीवन की प्रत्येक अवस्था अपने सौन्दर्य एवं पवित्रता से हमें प्रभावित और प्रेरित करती है। महारानी माया का स्वप्न, लुम्बिनी के उद्यान में सिद्धार्थ का जन्म, उनकी शिक्षा एवं उपलब्धियाँ, यशोधरा के साथ उनका विवाह एवं राहुल का जन्म, उनके द्वारा जीवन की चार घटनाओं का दर्शन तथा कपिलवस्तु से प्रस्थान, उनका मार के विरुद्ध संघर्ष एवं आध्यात्मिक प्रबोधन की प्राप्ति, धर्म-चक्र प्रवर्तन, शारिपुत्र एवं मोगालिआन का रूपान्तरण, कुशीनार में उनका परिनिर्वाण—इनमें से प्रत्येक घटना की अपनी विशिष्ट महत्ता है तथा साथ ही यह अन्य घटनाओं से मिलकर उनके जीवन को एक परिपूर्ण रूप भी प्रदान करती है। यद्यपि भगवान् बुद्ध के महान् जीवन का प्रत्येक भाग महत्त्वपूर्ण है, परन्तु कपिलवस्तु से उनके महाप्रस्थान से जुड़ी घटनाएँ हम पर गहरा प्रभाव डालती हैं। उनके महान् जीवन में अलौकिक घटनाओं की प्रचुरता है, परन्तु उनके व्यक्तित्व के मानवीय पक्ष को ही सदैव महत्ता दी जाती है।

परम सत्य का स्वरूप मन एवं वाणी की पहुँच से परे है। परम तत्त्व के स्वरूप को परिभाषित नहीं करने अथवा उसकी नकारात्मक परिभाषाएँ देने द्वारा भगवान् बुद्ध यही प्रमाणित करना चाहते थे कि परम तत्त्व समस्त परिभाषाओं से परे है। वे आपसे स्वयं में, स्वयं की अन्तर्निहित शक्तियों में विश्वास करने की अपेक्षा करते हैं। आत्म-विश्वास के बिना कोई उपलब्धि सम्भव नहीं है। ''स्वयं के लिए स्वयं प्रकाशपुंज बनें, स्वयं के लिए स्वयं ही आश्रय बनें। बाहर कोई आश्रय अथवा सहारा

'द डिवाइन लाइफ' पत्रिका १९६२ में प्रकाशित आलेख का अनुवाद

नहीं है। सब कुछ अस्थायी एवं नश्वर है। अपनी मुक्ति के लिए गम्भीरतापूर्वक प्रयास करें।'' प्रबोधन की प्राप्ति के पश्चात् भगवान् बुद्ध के प्रथम शब्द थे —''अमरत्व के द्वार खुले हैं। जो ग्रहणशील हैं, वे विश्वास करें।''

भगवान् बुद्ध का सन्देश सरल परन्तु अत्यधिक गहन एवं गम्भीर है। उन्होंने जगत् के सभी अनुभवों का वैज्ञानिक दृष्टिकोण से विश्लेषण किया तथा यह जाना कि यहाँ सब कुछ परिवर्तनशील, अस्थायी एवं क्षणभंगुर है। किसी वस्तु में सतत होने वाले परिवर्तन की अत्यधिक तीव्र गति हमें उसके स्थायी एवं स्थिर होने का विचार देती है। जिस प्रकार एक जलती हुई लकड़ी को अत्यन्त तीव्र गति से गोल-गोल घुमाया जाये तो वह एक अग्नि चक्र का दृश्य प्रस्तुत करती है; उसी प्रकार जगत् के समस्त वस्तु-पदार्थ स्थायी प्रतीत होते हैं। यहाँ कुछ भी स्थिर, स्थायी एवं अपरिवर्तनशील नहीं है। मानव की भी यही नियति है। उसका शरीर धीरे-धीरे क्षय होता जाता है तथा अन्ततः नष्ट हो जाता है। समस्त वस्तु पदार्थों की नश्वरता एवं क्षणभंगुरता के कारण जगत् में सर्वत्र दुःख, संघर्ष, कलह एवं असन्तोष है। दुःख का यह सार्वभौमिक अनुभव ही भगवान् बुद्ध की विचारधारा का प्रारम्भिक बिन्दु है। उन्होंने निराशावाद का सन्देश नहीं दिया अपितु वे तो अत्यधिक आशावादी थे। उन्होंने प्रबलतापूर्वक यह घोषणा की कि दुःख से मुक्त होने एवं शाश्वत आनन्द के साम्राज्य को प्राप्त करने का मार्ग है।

भगवान् बुद्ध द्वारा उद्घोषित चार मुख्य सत्य हैं—(१) जगत् में सर्वत्र दुःख है (दुःख); (२) दुःख का कारण तन्हा अथवा इच्छा है (दुःख समुदय); (३) इच्छा की समाप्ति से दुःख की समाप्ति होती है (दुःख निरोध) तथा (४) इच्छा का नाश अष्टांगिक मार्ग से सम्भव है (दुःख निरोध मार्ग)। वे कहते हैं कि दस-अकुशल अर्थात् दस बुराइयों से दूर रहना चाहिए। इनमें से तीन बुराईयाँ शरीर से सम्बन्धित हैं, चार वाणी से तथा शेष तीन मन से सम्बन्धित हैं। किसी की हत्या नहीं करना, चोरी नहीं करना तथा व्यभिचार नहीं करना शरीर से सम्बन्धित उचित आचरण है। असत्य नहीं बोलना, अपशब्दों का प्रयोग नहीं करना तथा कठोर एवं अभद्र शब्द नहीं बोलना वाणी का उचित उपयोग है। लोभ एवं द्वेष का होना, अन्धविश्वासों एवं अतार्किक विचारों के प्रति निष्ठा रखना और कार्य-कारण के नियम को अस्वीकार करना मन से सम्बन्धित तीन बुराईयाँ हैं।

सदाचार के नियम हैं—दानशीलता, पवित्र आचरण, सद्विचार, दूसरों की विनम्रतापूर्वक सेवा, रोगियों एवं वृद्धजनों की देखभाल, परोपकार हेतु अन्य जनों को प्रेरणा देना, अपने अच्छे कर्मों का सुफल दूसरों को देना तथा सदुपदेश सुनना एवं अन्य जनों को सुनाना। भगवान् बुद्ध ने कार्य-कारण के अटल सिद्धान्त पर विशेष बल दिया। उन्होंने लोगों से कहा कि वे सब ऐसे जगत् में रहते हैं जहाँ कारण सदैव अपना सहज एवं आवश्यक प्रभाव-परिणाम उत्पन्न करता है, इसलिए उनके द्वारा किये गये कार्यों का फल उन्हें अवश्य मिलेगा चाहे वे कहीं भी जायें। सत्कर्म हेतु पुरस्कार तथा दुष्कर्म हेतु दण्ड अवश्य प्राप्त होता है। मनुष्य जो भी कार्य करे, उसका प्रभाव उसके चरित्र पर निश्चय ही पड़ता है तथा यह चरित्र के माध्यम से उसकी नियति को भी सुखद अथवा दुःखद बनाता है।

निर्वाण अथवा बुद्धत्व प्राप्ति के इच्छुक साधक में ये चार योग्यताएँ होनी चाहिए—निर्वाण प्राप्त करने की तीव्र आकांक्षा, सद्विचार का अभ्यास, सत्कर्म करने की ऊर्जा एवं कर्मविधि का परीक्षण और पाँच मानसिक क्षमताओं का विकास। ये पाँच मानसिक क्षमताएँ हैं—श्रद्धा, स्मृति, अदम्य ऊर्जा, सद्विचार एवं परम ज्ञान। साधक को परम ज्ञान के सात लक्षणों का भी

विकास करना चाहिए यथा मानसिक सचेतता, स्कन्धों, चेतना के केन्द्रों एवं कार्य-कारण के सिद्धान्त का विश्लेषण आदि। चार मुख्य सत्यों एवं कार्य-कारण सिद्धान्त के विषय में अज्ञान, अहंकार, विषयभोग की इच्छा आदि बन्धनों का साधक द्वारा नाश किया जाना चाहिए। उसे घृणा, क्रोध, आलस्य, निद्रा, शंका, मन की चंचलता एवं विक्षिप्तता को भी दूर करना चाहिए। इसके पश्चात् ही उसे अष्टांगिक मार्ग पर चलना चाहिए। केवल तभी वह निर्वाण प्राप्ति के योग्य बन पायेगा।

बौद्ध धर्म के संन्यासी एवं सामान्य अनुयायी के लिए इन पाँच आदेशों का पालन करना अनिवार्य है—(१) किसी प्राणी की हत्या नहीं करना (२) ऐसी वस्तु का उपयोग नहीं करना जो उसे दी न गयी हो (३) असत्य नहीं बोलना (४) मादक द्रव्यों का सेवन नहीं करना (५) व्यभिचार नहीं करना। ये पाँच आदेश महर्षि पतंजलि द्वारा उनके राजयोग सूत्रों में उपदिष्ट पाँच यम-साधनाओं के समान हैं।

ऐसा प्रश्न हो सकता है कि बौद्ध धर्म का लक्ष्य क्या है? भगवान् बुद्ध के अनुसार 'निर्वाण' बौद्ध धर्म का लक्ष्य है। निर्वाण का शाब्दिक अर्थ 'बुझ जाना' है। यह शान्ति एवं आनन्द से परिपूर्ण ऐसा आध्यात्मिक अनुभव है जो हृदय में प्रज्वलित कामवासना, दुर्भावना एवं मूढ़ता रूपी तीन अग्नियों के बुझ जाने का सूचक है। भगवान् बुद्ध का धर्म निर्वाणिक आनन्द की प्राप्ति का मार्ग है। यह एक सम्प्रदाय नहीं अपितु एक मार्ग है। यह सिद्धान्तों का समूह नहीं, आध्यात्मिक विकास की प्रणाली है । निर्वाण व्यक्तित्व का पूर्ण नाश नहीं है, अपितु यह हमारे निम्नतम स्वभाव का समूल नाश है।

वर्तमान विश्व को भगवान् बुद्ध के उपदेशों एवं शिक्षाओं की महती आवश्यकता है। हम सर्वत्र सम्पूर्ण मानव जाति एवं इसकी संस्कृति के नाश की तैयारियाँ होते देख रहे हैं। आणविक बम का भय सभी ओर अशान्ति फैला रहा है। वैज्ञानिक एवं राजनीतिज्ञ शान्त नहीं बैठ रहे हैं। राष्ट्राध्यक्षों के मध्य पारस्परिक अविश्वास की भावना है। आज पूर्वाग्रह, द्वेष एवं घृणा इस सीमा तक बढ़ चुके हैं कि मानव-सभ्यता की मूल संरचना ही टूटती-बिखरती प्रतीत हो रही है। अधिकाधिक आणविक बम प्राप्त करना प्रत्येक राष्ट्र की महत्त्वाकांक्षा बन गया है। वैज्ञानिक अपनी प्रयोगशालाओं में दिन-रात प्रयास कर रहे हैं कि जितनी अधिक सम्भव हो, उतनी अधिक आणविक ऊर्जा को प्राप्त किया जाये जिसके द्वारा अनेकानेक नगरों एवं शहरों को मिटाया जा सके। कितनी भयावह स्थिति है। यह वास्तव में अत्यन्त दु:खद स्थिति है। भगवान् बुद्ध एवं महर्षि पतंजलि द्वारा दिये गये अहिंसा एवं मैत्री के दो महान् सिद्धान्तों के पालन द्वारा ही विश्व की रक्षा की जा सकती है। घृणा को घृणा द्वारा कभी समाप्त नहीं किया जा सकता है; घृणा को केवल प्रेम द्वारा ही समाप्त किया जा सकता है। यही वह उपदेश है जिसे विश्व को पुन:-पुन: सीखना है, एवं अपनाना है। आइए, आज हम सब एक प्रतिज्ञा लें कि हम प्रेम द्वारा घृणा पर तथा सद्भावना द्वारा दुर्भावना पर विजय प्राप्त करेंगे। यही विश्व-उद्धारक, प्रेम एवं अहिंसा के विग्रह भगवान् बुद्ध को हमारी श्रद्धांजलि अर्पित करने का सर्वश्रेष्ठ उपाय है।

हम सब कपिलवस्तु के सम्राट् महाराज शुद्धोधन एवं महारानी माया के पुत्र, यशोधरा के पति, राहुल के पिता, शान्ति के साकार विग्रह, परम करुणामय भगवान् बुद्ध को श्रद्धापूर्वक प्रणाम करें जिन्होंने हमें निर्वाण प्राप्ति का मार्ग दिखलाया। सम्पूर्ण विश्व में शान्ति हो।

(अनुवादिका : स्वामी गुरुवत्सलानन्द माता जी)

श्री शंकराचार्य जयन्ती सन्देश

गम्भीर साधना द्वारा सत्य का साक्षात्कार करें

परम पावन श्री स्वामी चिदानन्द जी महाराज

'कलि' शब्द का अर्थ कलह, झगड़ा अथवा कुछ हानिकारक वस्तु-परिस्थिति है। द्वापर युग के मनुष्य के विपरीत, कलियुग का मनुष्य शास्त्रों एवं गुरुजनों के उपदेशों के प्रति सन्देहग्रस्त नहीं होता है, यदि वह सन्देह प्रकट करता तो यह कुछ सीमा तक उसकी विनम्रता ही मानी जाती; परन्तु कलियुग का जीव तो इतना धृष्ट एवं अभिमानी है कि वह इस बात के प्रति पूर्ण आश्वस्त है कि समस्त शास्त्र एवं गुरुजन पूर्णतया गलत हैं। अपने अहंकार, अज्ञान एवं अनुभवहीनता के कारण वह उनका अपमान करने से भी नहीं हिचकिचाता है। वह विश्व के प्रत्येक विषय पर अपने अपरिपक्व विचारों को दृढ़तापूर्वक अभिव्यक्त करता है। इसके परिणामस्वरूप वह निरन्तर शास्त्रों के निर्देशों एवं गुरुजनों के उपदेशों के प्रति विरोध प्रकट करता रहता है तथा उन विषयों पर भी अपने विचारों के सही होने का मूर्खतापूर्ण दावा करता है जिसके सम्बन्ध में उसे कुछ ज्ञान नहीं है।

कलियुग के मनुष्यों के इस प्रकार के आचरण एवं व्यवहार के कारण शास्त्रों पर भाष्य लेखन की आवश्यकता अनुभव की गयी। भाष्य शास्त्रों की तार्किकता एवं विद्वतापूर्ण ऐसी विस्तृत व्याख्याएँ हैं जिनमें सभी विवादित विषयों का व्यापक विश्लेषण किया जाता है, विरोधी विचारों पर गहन चर्चा की जाती है तथा अन्ततः उचित सिद्धान्त की स्थापना की जाती है। इन विद्वतापूर्ण एवं तार्किक विधियों का उद्देश्य आपत्तिकर्त्ताओं को शान्त करना तथा कलियुग के अशान्त एवं उत्तेजित जीवों की त्रुटिपूर्ण एवं विक्षिप्त बुद्धि को आश्वस्त कर उन्हें शान्ति प्रदान करना है।

ऐसा कहा जाता है कि कलियुग की इस महती आवश्यकता के कारण ही स्वयं भगवान् को जगद्गुरु श्री आदि शंकराचार्य के रूप में धरा पर अवतरित होना पड़ा। बत्तीस वर्ष के अपने अल्पायु जीवन में, श्री आदि शंकराचार्य ने अपने अनेक प्रतिद्वन्द्वियों से शास्त्रार्थ किया तथा उन सबको अपनी प्रकाण्ड विद्वता एवं अकाट्य तर्कों से परास्त करके सनातन धर्म की पुनः स्थापना की जिसका उस समय ह्रास हो रहा था। श्री शंकराचार्य ने प्रस्थानत्रयी (ब्रह्मसूत्र, उपनिषद् एवं श्रीमद्भगवद्गीता) के आधार पर वेदान्त-सिद्धान्त को भी पुनर्स्थापित किया। अपनी प्रखर एवं विपुल बौद्धिक क्षमता से उन्होंने उस समय प्रचलित अनुचित प्रकार के सिद्धान्तों-विचारधाराओं के प्रणेताओं को पराभूत करते हुए अपने अद्भुत एवं ओजस्वी अद्वैत दर्शन की विजयपताका लहराने में सफलता प्राप्त की। आचार्य ने उन्हें न केवल प्रत्येक पग पर परास्त किया अपितु उनके दुराग्रह को समाप्त कर उन्हें अपनी विचारधारा स्वीकार करने को भी विवश किया।

ऐसा माना जाता है कि कलियुग के इन महान् ज्ञानगुरु भगवान् श्री शंकराचार्य ने लगभग ग्यारह शताब्दी पूर्व इस धरा पर जन्म लिया तथा मानवता को ज्ञान का प्रकाश प्रदान किया । उन्होंने अपनी महान् कृतियों द्वारा उपनिषद्, श्रीमद्भगवद्गीता एवं वेदान्त-सूत्रों का उचित अर्थ समझाया तथा अपनी विरासत स्वरूप भावी पीढ़ी

'द डिवाइन लाइफ' पत्रिका १९६४ में प्रकाशित आलेख का अनुवाद

को दिव्य ज्ञान की वह ज्योति प्रदान की जो आज भी अत्यन्त उज्ज्वल रूप से प्रकाशमान है। हमें इस सम्बन्ध में इस निर्विवाद सत्य का स्मरण रखना चाहिए कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में मानवता की पतनोन्मुखी स्थिति के बावजूद, आज भी भारत श्री शंकराचार्य के अद्वैत दर्शन के कारण विश्व के अनेक देशों के महान् विचारकों को अपनी ओर आकर्षित करता है। श्री शंकर-भगवत्पाद के अत्यन्त आश्चर्यप्रद, चमत्कारिक एवं अवर्णनीय व्यक्तित्व के कारण विश्व के अत्यन्त तेजस्वी विद्वज्जन भारत के समक्ष श्रद्धापूर्वक नतमस्तक होने को विवश हुए हैं। प्रस्थानत्रयी पर विशद भाष्यों के अतिरिक्त, इन महान् आचार्य की अन्य उत्कृष्ट रचनाएँ हैं—'विवेकचूड़ामणि', 'आत्मबोध', 'शतश्लोकी', 'प्रबोधसुधाकर', 'अपरोक्षानुभूति', 'सौन्दर्यलहरी' तथा समस्त ज्ञान के सारांश स्वरूप रचित लघु कृतियाँ 'दक्षिणामूर्ति स्तोत्र' एवं 'द्वादशपंजरिका स्तोत्र' आदि। उनकी ये समस्त रचनाएँ मानवता के लिए वास्तविक निधिस्वरूप हैं।

इस प्रकार के भगवद्-तुल्य, ज्ञानी सन्तजनों का उदाहरण हमारे समक्ष है जो सत्य के पथ पर चले हैं। उन्होंने अपने प्रत्यक्ष अनुभव के आधार पर प्राप्त महान् सत्यों को अपनी विरासत स्वरूप हमारे परम कल्याण के लिए ही हमें प्रदान किया है। परन्तु इन सत्यों को मात्र जिह्वा से दोहराने से कोई लाभ नहीं होगा। जब तक हम स्वयं दिव्य जीवन व्यतीत करते हुए उनके इन उपदेशों का अभ्यास करके सत्य का साक्षात्कार नहीं करते हैं, इनके दोहराने का कोई अर्थ नहीं है। सत्य का साक्षात्कार तभी सम्भव है जब यह स्वयं आध्यात्मिक प्रबोधन के माध्यम से हमारे भीतर प्रकटित होता है। यदि हम आचार्य के केवल एक श्लोक के वास्तविक अर्थ को समझकर उसे जीवन में उतारने का प्रयास करें, तो हम निश्चय ही अत्यधिक लाभान्वित होंगे। उदाहरणत: हम आचार्य शंकर की कृति 'विवेकचूड़ामणि' के इस श्लोक पर विचार करें—

दुर्लभं त्रयमेवैतद्देवानुग्रहहेतुकम्।
मनुष्यत्वं मुमुक्षुत्वं महापुरुषसंश्रय:।।

इस जगत् में तीन बातें दुर्लभ हैं; ये केवल भगवद्-अनुग्रह से ही प्राप्त होती हैं। ये हैं—मनुष्य जन्म, मोक्ष की तीव्र आकांक्षा तथा सन्त-महापुरुषों का संग।

ऐसा कहा जाता है कि मनुष्य का जन्म अन्य समस्त प्राणियों से श्रेष्ठ है फिर वे चाहे अधम योनि के प्राणी हों अथवा देवतागण। अधम योनि के प्राणियों से मनुष्य जन्म की श्रेष्ठता को समझ पाना सरल है परन्तु देव योनि में जन्म से भी मनुष्य रूप में जन्म क्यों श्रेष्ठ है? ऐसा इसलिए है क्योंकि मोक्ष प्राप्ति का अधिकार देवताओं को भी नहीं दिया गया है। यदि देवतागण दिव्य चैतन्य का अनुभव प्राप्त करना चाहते हैं, तो उन्हें पृथ्वी पर मनुष्य के रूप में जन्म लेना होगा। केवल यह मानव शरीर ही साधना-शरीर है। यद्यपि मनुष्य जन्म में दु:ख-कष्ट एवं मृत्यु का भय है, हम वस्तुत: नित्य शुद्ध, अनन्त एवं अविनाशी तत्त्व हैं। इस सत्य का साक्षात्कार केवल मनुष्य ही कर सकते हैं। परन्तु अधिकांश मनुष्य अपने मानव-जन्म का लाभ नहीं उठाते हैं। जो मनुष्य इस दुर्लभ अवसर का जीवन के सर्वोच्च लक्ष्य की प्राप्ति हेतु उपयोग नहीं करता है, वह मनुष्य की आकृति में पशु ही है। इस प्रकार 'मनुष्यत्व' भगवान् का प्रथम महान् उपहार है।

भगवान् का दूसरा महान् उपहार मुमुक्षुत्व अर्थात् मोक्ष प्राप्ति की इच्छा है। दीपक के चारों ओर मंडराते कीट-पतंगों को देखिए। कुछ समय पहले उनका जन्म हुआ, और अब वे इधर-उधर दौड़ रहे हैं; उन्हें स्वयं नहीं

पता है कि यह क्या वस्तु है जो उन्हें अपनी ओर आकर्षित करके उनके नाश का कारण बनती है। कुछ समय बाद ही ये कीट-पतंगें थक जाते हैं और मृत्यु को प्राप्त होते हैं। मनुष्य के जीवन की भी यही स्थिति है। यह अत्यन्त आश्चर्यजनक है कि इतनी बीमारियों, दुर्घटनाओं, दु:खों एवं कष्टों के होते हुए मनुष्य जीवित है। जन्म एवं मृत्यु रूपी दो सीमाओं के मध्य का अन्तराल ही यह जीवन है। फिर भी, मनुष्य जीवन के साथ क्या करता है? वह सोचता है कि इन्द्रिय-भोग में ही सुख है, अत: जीवनपर्यन्त विषय-भोगों के पीछे ही भागता रहता है। जब उसे यह ज्ञात होता है कि इनमें सच्चा सुख नहीं है, तब तक बहुत देर हो चुकी होती है।

इसलिए हमें सन्त-महापुरुषों की शरण लेनी चाहिए। **''तद् विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया''**—हमें उनके चरणों में अपने अहंकार को समर्पित करके, उनकी सच्ची सेवा द्वारा उनके हृदय को जीतना चाहिए। यदि हम ऐसा करेंगे, तो वे हमें वह दिव्य ज्ञान प्रदान करेंगे जो हमें समस्त दु:ख-कष्ट से मुक्त करके शाश्वत आनन्द की प्राप्ति करायेगा। हमें विनम्रता एवं श्रद्धापूर्वक सन्तजनों के पास जाना चाहिए तथा उनसे उस ज्ञान की प्राप्ति हेतु प्रार्थना करनी चाहिए जिसके प्राप्त करने के बाद अन्य कुछ प्राप्त करना शेष नहीं रहता है। ज्ञानी जनों से यह सम्पर्क 'महापुरुषसंश्रय' भगवान् का तीसरा उपहार है।

यदि हम अपने लक्ष्य के प्रति सच्चे एवं गम्भीर हैं, तो मोक्ष एवं अमृतत्व की प्राप्ति अत्यन्त सरल है। प्रत्येक मनुष्य इस दिव्य निधि का उत्तराधिकारी है। इस सर्वोच्च निधि को प्राप्त करने के लिए उसे कुछ साधारण वस्तुओं का त्याग करना होगा जो अन्तत: उसके लिए हानिकारक ही होती हैं। यह कुछ इस प्रकार से है—मान लीजिए कि आपके पास दाल एवं रोटी है, और आपसे यह कहा जाता है कि आधे घण्टे में ही कुछ विशिष्ट एवं सुस्वादिष्ट व्यंजन तैयार हो जायेंगे; तो क्या आप अपनी साधारण दाल-रोटी को छोड़कर इस विशिष्ट भोजन हेतु कुछ प्रतीक्षा नहीं करेंगे? इसी प्रकार आपसे कुछ साधारण इच्छाओं एवं सुखों का त्याग करने हेतु कहा जाता है जो अन्त में आपको दु:ख ही देंगे; इस त्याग करने के उपरान्त जो उपलब्धि आपको होगी वह अवर्णनीय रूप से आनन्दप्रद है।

'यो वै भूमा तत्सुखं'—केवल भूमा अर्थात् परम तत्त्व ही आनन्द का स्रोत है तथा इसकी प्राप्ति ही दिव्य जीवन का लक्ष्य है। इस लक्ष्य की प्राप्ति में बाधा तथा मनुष्य का महानतम शत्रु बाहर नहीं है, वह मनुष्य के भीतर ही है। यह बाधा मन है जो हमें दु:खदायक वस्तुओं को सुखदायक मानने हेतु कहता है। आपको अपने मन के साथ असहयोग करना होगा, इसे शुद्ध करना होगा, और तब यह आपका परम मित्र बन जायेगा। महान् ऋषियों की शिक्षाओं, श्रीमद्भगवद्गीता एवं श्रीमद्भागवत के ग्यारहवें स्कन्ध के उपदेशों के पालन का प्रयास करिए।

'अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्।' यह जगत् अनित्य है एवं दु:खों से भरा है। यहाँ जन्म लेने के उपरान्त, भगवान् की आराधना करिए। यही अन्तिम सन्देश है।

दु:खों से भरे इस अनित्य जगत् से मन को हटाइए तथा इसे भगवान् के पावन चरण-कमलों के ध्यान में लगाइए; क्योंकि केवल भगवद्-चरणों में ही शाश्वत जीवन, परम आनन्द एवं तृप्ति की प्राप्ति सम्भव है।

श्री गुरुदेव के असीम अनुग्रह आप सब पर हों।

हरि ॐ तत् सत्।

(अनुवादिका : स्वामी गुरुवत्सलानन्द माता जी)

गुरुदेव श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज का निगूढ़ व्यक्तित्व

श्री स्वामी कृष्णानन्द जी महाराज

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै।
तेजस्वि नावधीतमस्तु।
मा विद्विषावहै। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

आध्यात्मिक जीवन मात्र एक शैक्षिक प्रक्रिया नहीं अपितु आत्म-निर्माण की प्रक्रिया है, अतः प्राचीन काल के गुरुजनों द्वारा अपने शिष्यवृन्द को पूर्णतया नवीन विधियों एवं रूपों में अनुशासित करना आवश्यक था। आधुनिक मनुष्य अपनी आत्मा को खो चुका है, इसलिए उसका जीवन के प्रति पूर्णतः भौतिकवादी दृष्टिकोण बन चुका है, उसके लिए इन विधियों को समझ पाना ही दुष्कर है, इनकी प्रशंसा करना तो दूर की बात है। वह एक प्राणविहीन, जीवनशक्तिविहीन अस्थिपंजर तथा एक मशीन की तरह जीवन जीता है। अतः उसके लिए औपनिषदिक काल के शिष्यों के उस अनुशासन को समझ पाना पूर्णतया असम्भव है, जब गुरुजन उनके व्यक्तित्व के अन्तरतम भाग को प्रशिक्षित करते थे। आत्म-निर्माण की प्रक्रिया का यही अर्थ है। इसमें हमारे अस्तित्व के मूल को, अन्तरतम भाग को पूर्ण परिशुद्ध किया जाता है।

शुद्धिकरण अथवा पवित्रीकरण की यह प्रक्रिया ही साधना है। परन्तु आजकल हम मात्र तथ्यों-सूचनाओं को एकत्रित करने वाले वैज्ञानिक, कुतूहलवशात् जानने वाले निरीक्षणकर्ता, प्रयोगकर्ता बन चुके हैं। जीवन के प्रति इस दुर्भाग्यपूर्ण दृष्टिकोण के कारण आज हम ऐसी स्थिति में पहुँच गये हैं जहाँ हम उस सूखे पत्ते के समान बन गये हैं जो बाहरी संसाधनों द्वारा ही पोषण प्राप्त करता है। अठारहवीं शताब्दी में एक दर्शन के रूप में प्रारम्भ हुआ भौतिकवाद आधुनिक जीवन का सर्वस्व बन चुका है। आज भौतिकवाद मात्र एक सिद्धान्त अथवा दर्शन नहीं है, यह हम स्वयं हैं। हम स्वयं पदार्थ बन चुके हैं, मिट्टी की गेंदें तथा प्राणविहीन मशीनें बन चुके हैं।

अतः जीसस क्राइस्ट, मोहम्मद पैगम्बर, भगवान् श्री कृष्ण, श्री रामकृष्ण परमहंस जी अथवा श्री स्वामी शिवानन्द जी के उपदेशों को समझ पाना हमारे लिए कठिन हो गया है। हम केवल सभाओं-सम्मेलनों में विचारों के आदान-प्रदान से तथा सामाजिक स्तर पर व्यावहारिक कौशल से प्राप्त उन तथ्यों-सूचनाओं को सदुपदेश मान लेते हैं जो व्यक्ति की आत्मा से उद्भूत नहीं होते हैं।

यदि हम महान् तिब्बती गुरु मारपा द्वारा अपने एक महान् शिष्य मिलारेपा को प्रशिक्षित करने हेतु अपनायी गयी विधियों एवं तकनीकों के विषय में जानेंगे तो हमारे विस्मय की कोई सीमा नहीं रहेगी। हम उन विधियों को समझ नहीं सकते हैं और यह हो सकता है कि हम स्वयं को श्रेष्ठ एवं महत्त्वपूर्ण मानकर, इन महान् गुरुजनों को पुरानी शैक्षिक पद्धतियाँ प्रयोग करने वाले ऐसे असभ्य एवं अशिष्ट जन घोषित कर दें जो आधुनिक शैक्षिक मनोविज्ञान एवं हमारी सभ्य शैक्षिक पद्धतियों यथा मॉन्टेसरी व्यवस्था से परिचित नहीं हैं। परन्तु इस प्रकार स्वयं को श्रेष्ठ मानने से हम आध्यात्मिक अनुशासन की महत्ता को नहीं जान पायेंगे।

यद्यपि ईसाई धर्म पाप के सिद्धान्त से सुपरिचित है, जिसके अनुसार एडम (आदम) एवं इव (हव्वा) के वंशज होने के कारण मनुष्य जन्मतः बुरे स्वभाव से युक्त होता है; परन्तु यह जानना भी आवश्यक है कि मनुष्य का यह स्वभाव आध्यात्मिक अनुशासन का कट्टर विरोधी होता है। हम जैसे मनुष्यों के लिए यह समझना कठिन है

कि चैतन्य आत्मा किस सीमा तक जड़ पदार्थ के साथ सम्बन्धित हो चुकी है, तादात्म्य कर चुकी है। भौतिक आवरणों के साथ इतना अधिक सम्बन्धित होना, उनके साथ इस प्रकार संयुक्त हो जाना वस्तुत: अत्यन्त आश्चर्यजनक है। यह सम्बन्ध इतना गहरा हो चुका है कि हम कह सकते हैं, जैसा कि मैंने पूर्वत: कहा कि हम पदार्थ द्वारा धारण की गयी आकृतियों के समान बन गये हैं। हम मन एवं आत्मा होने की अपेक्षा मात्र शरीर रह गये हैं। हम शरीर की आवश्यकताओं-इच्छाओं को पूरा करने के लिए मन का एक सहायक के रूप में उपयोग कर रहे हैं। हममें से कितने मनुष्यों के पास इतना समय है कि हम यह विश्वास कर सकें कि हमारे भीतर आत्मा है, गहन तर्क एवं विचार करना तो दूर की बात है।

परन्तु सन्त-महापुरुष किन्डरगार्टन अर्थात् बालविहार के अध्यापक नहीं हैं। वे राजनीतिशास्त्र, गणित तथा अन्य विज्ञानों-विषयों के शिक्षक नहीं हैं। एक सन्त अथवा महापुरुष परिपूर्णता-प्राप्त आत्मा हैं, अत: इस परिपूर्णता को प्राप्त करने हेतु जिस अनुशासन का उन्होंने स्वयं पालन किया, वे अपने एक ग्रहणशील शिष्य को उसी अनुशासन की शिक्षा देने हेतु समुत्सुक होंगे। आजकल के विद्यार्थियों को उपलब्ध शैक्षिक सामग्री एवं पुस्तकों की अपेक्षा सन्त-महापुरुषों के आदर्श जीवन उच्च शिक्षा प्रदान करने के महानतम स्रोत हैं।

एक आध्यात्मिक साधक वह जीवात्मा है जो परिपूर्णता प्राप्ति के पथ पर है। वह स्कूल, कॉलेज अथवा यूनिवर्सिटी में अध्ययन करने वाला विद्यार्थी नहीं है। वह मानव समाज में भौतिक, आर्थिक एवं सामाजिक रूप से निर्वाह करने हेतु किसी उपाधि अथवा योग्यता को अर्जित नहीं करना चाहता है। आध्यात्मिक शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति को सामाजिक व्यवस्थाओं एवं राजनीतिक कौशलों के इस जगत् में रहने हेतु योग्य बनाना नहीं है। इसका उद्देश्य सर्वथा भिन्न है।

आज हमारा चिन्तन इस सीमा तक भौतिकवादी एवं अर्थवादी हो चुका है कि जब हमसे कहा जाता है कि आध्यात्मिक शिक्षा भगवदोन्मुखी प्रक्रिया है, तो हम प्राचीन विधियों के प्रति तिरस्कार के भाव के साथ मन ही मन हँसते हैं। गम्भीर एवं सच्चे साधकों ने श्री रामकृष्ण परमहंसदेव से क्या शिक्षा प्राप्त की? वे जब उनके सम्पर्क में आये, तो उनके व्यक्तित्व में पूर्ण परिवर्तन घटित हुआ; वे वैसे नहीं रहे, जैसे वे पहले थे। महान् सद्गुरुओं का आश्रय प्राप्त होने से ऐसे परिवर्तन की आशा एवं अपेक्षा ही की जाती है।

विश्व विभिन्न ऐतिहासिक अवस्थाओं से गुजर चुका है तथा हमारे लिए यह जानना कठिन है कि इस समय यह किस अवस्था से गुजर रहा है क्योंकि आज हम उस सौभाग्यपूर्ण परिस्थिति में नहीं हैं जहाँ हमारा सम्पर्क ऐसे महान् सद्गुरुओं से हो सके। आज विश्व में ऐसे महान् सत्पुरुषों को रखने की सामर्थ्य नहीं है, अत: इसने स्वयं को उनसे पूर्णत: मुक्त कर दिया है। यह कहना असत्य नहीं होगा कि आज मानवता 'गुलिवर ट्रेवल्स' पुस्तक में वर्णित लिलिपुट क्षेत्र के उन निवासियों का बृहद् समूह मात्र बन चुकी है जिनका आकार चींटी के समान है परन्तु अहंकार पर्वत के समान है तथा जो एक सीढ़ी के माध्यम से गुलिवर के पैर पर चढ़ना चाहते हैं।

मानवीय समझ के बौनेपन ने, इसकी क्षुद्रता ने जीवन के सर्वोच्च मूल्यों को विस्मृत करके आत्म-सन्तुष्टि का ऐसा रूप धारण किया है कि आधुनिक शिक्षा पद्धति में आध्यात्मिक शिक्षा की प्राचीन व्यवस्था की न केवल पूर्णतया अवहेलना की गयी है अपितु इन आध्यात्मिक मूल्यों को सर्वथा भुला दिया गया है।

श्री रामकृष्ण परमहंसदेव के प्रथम शिष्य, जीसस क्राइस्ट के बारह धर्मदूत तथा अवतार-पुरुषों एवं धर्मगुरुओं के प्रारम्भिक सहायक एवं सहयोगीजन ही आत्मा की उस भव्य महिमा के साक्षी हो सकते हैं जो इन

विभिन्न सन्त-महापुरुषों में विविध रूपों में अभिव्यक्त होती है । यह आवश्यक नहीं है कि दो सन्तों का व्यवहार एक जैसा हो। हमारे समक्ष दक्षिण भारत के सुप्रख्यात आध्यात्मिक महापुरुषों अर्थात् नयनार एवं आलवार सन्तों के उदाहरण हैं। यदि हम इन वैष्णव सन्तों 'आलवार' तथा शैव सन्तों 'नयनार' के जीवन के विषय में पढ़ेंगे, तो अकल्पनीय आनन्द एवं विस्मय से हमारा रोम-रोम रोमांचित हो जायेगा। वे केवल भगवान् में श्रद्धा रखने वाले आस्तिक जन नहीं थे, न ही वे केवल किसी धार्मिक व्यक्ति के समान भगवद्-आराधना करने वाले भगवद्-भक्त थे। यह कहना अत्यन्त कठिन है कि उनका भगवान् के साथ कैसा सम्बन्ध था। भगवान् के प्रति इन नयनार एवं आलवार सन्तों के भाव की व्याख्या हेतु शब्द पर्याप्त नहीं हैं। हम यह कहकर स्वयं को सन्तुष्ट कर सकते हैं कि भगवान् इन सन्तों के रोम-रोम में समाये थे। उनके कार्य एवं स्वभाव के प्रत्येक अंश में मानो भगवान् ही नृत्य कर रहे हों। उनकी शक्तियाँ भगवान् की शक्तियों के समान थीं, तथा वे भगवान् से वैसा ही व्यवहार करते थे जैसा वे किसी अन्य व्यक्ति के साथ करते थे। वे भगवान् को उसी प्रकार पुकार सकते थे जिस प्रकार हम एक सेवक को पुकारेंगे। उनके लिए इसमें कोई कठिनाई नहीं थी। उनके व्यक्तित्व के भगवदीय सत्ता से पूर्णरूपेण ओत-प्रोत हो जाने को ही सन्तत्व का परमोत्कर्ष कहा जा सकता है।

हम भगवान् श्री कृष्ण, भगवान् श्री राम, जीसस क्राइस्ट, श्री गौरांग महाप्रभु, श्री रामकृष्ण परमहंसदेव आदि इन अवतार-पुरुषों एवं सन्तजनों की पूजा-आराधना करते हैं परन्तु हम अपने हृदय के अन्तरतम भाग से इनके व्यक्तित्व में समाविष्ट होकर, इनसे एकाकार होकर यह नहीं जान सकते हैं कि वे वस्तुत: क्या थे, क्या सोचते थे, क्या अनुभव करते थे तथा किस प्रकार जीवन जीते थे।

उस साधक को ही शिष्य कहा जा सकता है जो न केवल अपने गुरु की आज्ञाओं का पालन करता है अपितु जो अपने गुरु के दिव्य स्वभाव का सहभागी भी होता है। यह महत्त्वपूर्ण है। आज्ञाकारिता से अभिप्राय जो गुरु कहें, केवल उसके प्रति 'हाँ जी' अर्थात् स्वीकृति भाव नहीं है, अपितु यह शिष्य की आत्मा का गुरु की महिमामयी आत्मा के प्रति पूर्ण समर्पण है। यह शिष्य की जिह्वा द्वारा नहीं अपितु उसकी आत्मा द्वारा की गयी 'हाँ' अर्थात् स्वीकृति है, समर्पण है। जिस प्रकार सन्त भगवान् से एकत्व अनुभव करते हैं, उसी प्रकार से शिष्य गुरु से एकाकार होते हैं। यह एक विधि है जिसके माध्यम से हम समझ सकते हैं कि एक शिष्य को अपने गुरु के साथ किस प्रकार का सम्बन्ध स्थापित करना चाहिए।

सद्गुरुदेव श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज ने विश्व के समक्ष अपने सहज-सरल तरीके से दिव्य जीवन के उस आदर्श को प्रस्तुत किया जिसके वे स्वयं साकार विग्रह थे। अपने विशिष्ट स्वरूप में, वे प्राचीन औपनिषदिक गुरु महर्षि याज्ञवल्क्य अथवा तिब्बती गुरु मारपा की प्रतिकृति थे अर्थात् उनके जैसे ही थे। यह कहने का कारण है क्योंकि उनका स्वभाव भी अबोधगम्य था। उनके जीवन को हम तार्किक विकास की दृष्टि से नहीं देख सकते हैं। हम उनके किसी कार्य-व्यवहार से किसी सुनिश्चित निर्णय एवं निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सकते हैं। हमारे लिए उनका व्यवहार अप्रत्याशित एवं कभी-कभी अबोधगम्य होता था; हम उनके व्यवहार का पूर्वानुमान नहीं लगा सकते थे तथा न ही उसे समझ पाते थे। गुरुदेव इस सिद्धान्त की एक परिपूर्ण एवं जीवन्त प्रतिमा थे कि जितना अधिक हम देते हैं, स्वयं को अर्पित करते हैं; उतना अधिक भगवान् हमारे भीतर प्रविष्ट होते हैं। यहाँ 'देने' का आध्यात्मिक रूप में अर्थ समझना चाहिए। सामान्य जन गुरुदेव को उनकी असीम दानशीलता के कारण विनोदपूर्वक 'शिवानन्द' नहीं अपितु 'गिवानन्द' (Givananda) कहते थे।

मुझे आज भी वह घटना याद है जिससे मैं

अत्यधिक अचम्भित हो गया था, परन्तु उनकी महानता की प्रतीकस्वरूप उस घटना का मैं प्राय: प्रेमपूर्वक स्मरण करता हूँ। उन दिनों आश्रम की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी, अत: वे सबके लिए अत्यन्त कठिनाई के दिन थे। आश्रम के किसी अन्तेवासी ने कभी कोई फल न प्राप्त किया और न ही देखा। केवल श्री गुरुदेव के लिए अत्यन्त अल्प मात्रा में फल खरीदे जाते थे। गुरुदेव वयोवृद्ध थे, अत: सब अन्तेवासियों की यही इच्छा थी कि उनकी उचित देखभाल हो। प्रतिदिन थोड़े से फल खरीदे जाते थे तथा माँ गंगा के तट पर स्थित उनके कुटीर (जिसे आज गुरुदेव कुटीर कहा जाता है) की रसोई में रखे जाते थे। एक दिन कुछ व्यक्ति श्री गुरुदेव के दर्शनार्थ आये, उन्होंने गुरुदेव को प्रणाम किया और जाने लगे। गुरुदेव उन्हें प्रसाद-स्वरूप एक-दो फल देना चाहते थे। उन्होंने अपने रसोइये से पूछा, ''आपके पास कुछ फल हैं?''

रसोइये ने कहा,''नहीं, स्वामी जी। फल नहीं हैं।'' क्योंकि वह फल कहाँ से लाता; रसोई में जो दो या तीन सेब तथा कुछ सन्तरे थे, वे तो गुरुदेव के लिए रखे गये थे।

श्री गुरुदेव ने कहा, ''जाइए और देखिए। कुछ फल हो सकते हैं।''

उसने वही दोहराया, ''नहीं, स्वामी जी। फल नहीं हैं।''

उन आगन्तुकों ने श्री गुरुदेव को पुन: प्रणाम किया और चले गये। इसके पश्चात् गुरुदेव ने रसोइये से प्रश्न किया, ''क्या फल नहीं हैं?''

उसने पुन: वही उत्तर दिया, ''नहीं, स्वामी जी।''

गुरुदेव सीधे रसोई में गये। यह कोई बड़ा रसोईगृह नहीं था, कुटीर के एक कोने का ही रसोई के रूप में उपयोग किया जाता था। उन्होंने वहाँ फलों की एक छोटी टोकरी देखी जिसमें कुछ सेब एवं सन्तरे थे। अत: उन्होंने रसोइये से कहा, ''यहाँ तो फल रखे हैं। तब आपने ऐसा क्यों कहा कि फल नहीं हैं। मैं उन आगन्तुकों को कुछ फल देना चाहता था।''

उसने उत्तर दिया, ''ये फल केवल स्वामी जी के लिए हैं।''

''अच्छा, ये मेरे लिए हैं,'' यह कहते हुए गुरुदेव ने टोकरी उठायी और सारे फल बन्दरों को दे दिये। अब उनके इस व्यवहार पर आप क्या कहेंगे! उन्होंने फलों की पूरी टोकरी खाली कर दी। अब आपको यह समझ नहीं आयेगा कि आप जोर-जोर से रोयें, पछतायें अथवा उन्हें समझने की कोशिश करें।

मैंने हमेशा यह अनुभव किया है कि कोई सद्ग्रन्थ, यहाँ तक कि उपनिषद् भी सन्तों के जीवन के समान प्रेरणाप्रद नहीं हो सकते हैं। हम इस प्रकार की अनेक रोमांचक, हृदयस्पर्शी एवं प्रेरणादायी घटनाओं को 'महाभक्तविजय' पुस्तक में पढ़ सकते हैं जिसमें महाराष्ट्र एवं कर्नाटक के महान् सन्तों की जीवनगाथाएँ वर्णित हैं। ये सन्त बाह्य दृष्टि से अकिंचन एवं सामान्य व्यक्ति ही प्रतीत होते थे। सन्त एकनाथ, सन्त नामदेव, पुरन्दर दास एवं सन्त तुकाराम समृद्ध जमींदारों की सन्तान नहीं थे। निर्धनता ही उनकी एकमात्र सम्पदा थी। उनके पास निर्धनता के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं था। परन्तु वे भगवान् के अत्यन्त समीप थे। उनमें से एक सन्त तो भगवान् के साथ सेवक की भाँति व्यवहार कर रहे थे। भगवान् कृष्ण स्वयं एक छोटे लड़के के रूप में सन्त एकनाथ की सेवा कर रहे थे। वे उनके वस्त्र धोते थे, घर की सफाई करते थे तथा उनके जूठे बर्तन भी साफ करते थे। उन सन्त की जीवन-गाथा में ऐसा उल्लेख आता है कि एक बार एक अन्य सन्त भगवान् के दर्शन हेतु पण्ढरपुर गये तो वहाँ भगवान् को अनुपस्थित पाया। उन्हें स्वप्न में एक दिव्य वाणी द्वारा कहा गया कि भगवान् सन्त एकनाथ के घर में हैं। उन्हें अत्यधिक आश्चर्य हुआ कि भगवान् किस प्रकार पण्ढरपुर छोड़कर

एक निर्धन व्यक्ति के घर में रह रहे हैं। वे भगवान् के दर्शनार्थ सन्त एकनाथ के घर की ओर दौड़े। ऐसा कहा जाता है कि वह सेवक वहाँ से अदृश्य हो गया। किसी को पता नहीं चला कि वह कहाँ चला गया। क्योंकि वह नहीं चाहता था कि कोई उसे खोज पाये।

आप सब यह नहीं समझ पायेंगे कि महान् सद्गुरुओं के प्रारम्भिक शिष्यजनों ने जिन दु:खप्रद कठिनाइयों को सहन किया, वे किस प्रकार उनके लिए सुख एवं शान्तिप्रदायक भी थीं। हममें से कुछ व्यक्ति आधुनिक युग के महानतम सन्त श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज के विषय में कुछ बातें कह सकते हैं जो हमारे प्रत्यक्ष अनुभव पर आधारित हैं। उनके जैसा महिमामय व्यक्तित्व देख पाना दुर्लभ है; जीसस क्राइस्ट के समान अपना सर्वस्व दूसरों को देने वाली विशालहृदयता एवं उदारता केवल ऐसे महान् गुरुजनों में ही देखी जा सकती है।

श्री गुरुदेव के मन में अकस्मात् ही अपने शिष्यों को कुछ उपदेश देने का विचार उठता, और वे तुरन्त उसी स्थान पर उन्हें उपदेश प्रदान कर देते। इसके लिए कोई पूर्व सूचना नहीं दी जाती थी।

उन दिनों आश्रम में कलकत्ता का एक युवक रह रहा था। वह आश्रम डिस्पेन्सरी में कम्पाउन्डर के रूप में कार्य कर रहा था। एक दिन श्री गुरुदेव अचानक ही उसके पास पहुँचे। यह सुबह ९ बजे अथवा उससे कुछ पहले का समय था। श्री गुरुदेव डिस्पेन्सरी गये तथा उसे बाहर से ताला लगा कर अपने कुटीर में चले गये। कोई नहीं जानता था कि यह क्यों हुआ।

उस युवक ने उस समय तक न तो स्नान किया था और न ही कुछ खाया था, परन्तु किसी ने इस बात की ओर ध्यान नहीं दिया। सूर्यास्त का समय हो रहा था, परन्तु ऐसी कोई आशा अथवा संकेत नहीं दिख रहा था कि गुरुदेव डिस्पेन्सरी के दरवाजे को खोलेंगे। उस युवक ने सुबह से कुछ नहीं खाया था; वह यह समझ नहीं पा रहा था कि उसके साथ क्या हो रहा था। मैं जब वहाँ से गुजरा, तो वह खिड़की से बाहर झाँक रहा था। मुझे उसने पूरी बात बतायी। परन्तु कोई क्या कह सकता था? हम भी कुछ नहीं जानते थे। हम सब अत्यधिक आश्चर्यचकित थे। उसकी दशा अत्यन्त दयनीय थी। परन्तु कोई नहीं जानता था कि बात क्या है। इस प्रकार अत्यधिक दु:ख एवं कष्ट के साथ उसने वह पूरा दिन एवं रात गुजारे। वह रो रहा था कि यह क्या हो रहा है।

अगली सुबह श्री गुरुदेव अपने हाथ में एक सन्तरा लिये हुए आये और उन्होंने डिस्पेन्सरी का ताला खोला। उन्होंने उस युवक से पूछा, ''आप सम्पूर्ण दिन एवं रात्रि क्या सोचते रहे?'' आप कल्पना कर सकते हैं कि वह युवक क्या सोच रहा होगा। श्री गुरुदेव ने पुन: पूछा, ''क्या आप सम्पूर्ण दिन एवं रात्रि भगवद्-चिन्तन कर रहे थे?''

युवक ने उत्तर दिया, ''इसके अतिरिक्त सब चिन्तन हो रहा था।''

''कोई बात नहीं, आप एक भले युवक हैं। आपने महान् तपस्या की है और यह आपके लिए उपहार है।'' ऐसा कहते हुए श्री गुरुदेव ने उसे सन्तरा दिया एवं चले गये।

हममें से कोई भी गुरुदेव द्वारा ऐसे कठोर व्यवहार के अनुभव से अपरिचित नहीं था अर्थात् हमें भी ऐसे व्यक्तिगत अनुभव हुए थे। आश्रम के श्रेष्ठतम कार्यकर्ता भी इस प्रकार का अनुभव प्राप्त कर चुके थे। मुझे याद आता है कि एक दिन उन्होंने मुझे ब्रह्मपुरी के समीप जंगल में एक कुटिया में जाकर एकान्तवास करने हेतु कहा। एक भक्त श्री गुरुदेव को यह कुटिया अर्पित करना चाहता था। उन दिनों मैं किसी कार्य में अत्यधिक व्यस्त था। श्री गुरुदेव ने कहा, ''जाइए, उस कुटिया में निवास करिए और ध्यान करिए।'' जैसा कि मैंने बताया कि यह बिल्कुल अचानक हुआ। उनके उपदेश-आदेश बिना किसी पूर्व सूचना के उसी

स्थान पर दे दिये जाते थे। वे ऐसा नहीं कहते थे, ''मैं चाहता हूँ कि आप कल वहाँ जायें।'' वे हमसे कहते थे, ''अभी इसी क्षण जाइए।''

मैंने उनसे कहा, ''कुछ आवश्यक कार्य है।'' जैसे ही मैंने कहा कि कुछ कार्य है, श्री गुरुदेव थोड़े क्रुद्ध हो गये और कहने लगे,''कार्य? किसका कार्य? किसके लिए कार्य? यह जगत् ही अस्तित्व में नहीं है।'' ये उनके शब्द थे। उन्होंने पुन: कहा, ''आपके समक्ष जगत् ही नहीं है, तो कार्य कहाँ है?'' ऐसा कहकर वे चले गये। उन्होंने इस विषय पर मुझसे पुन: बात नहीं की। परन्तु किसी कारणवशात्, वह एकान्तवास नहीं हो पाया।

श्री गुरुदेव 'मध्यम मार्ग' के प्रबल समर्थक थे। वे दिन भर क्रियाशील रहने वाले व्यक्ति की आलोचना करते थे तथा उस व्यक्ति की भी भर्त्सना करते थे जो पूरे दिन खाली बैठा रहता था अर्थात् कुछ कार्य नहीं करता था। कोई भी उनकी दृष्टि से बचता नहीं था। आश्रम में कुछ ऐसे व्यक्ति थे जो दिन भर माला जपते अथवा श्रीमद्भागवत महापुराण एवं रामायण का पाठ करते थे परन्तु किसी कार्य में भाग नहीं लेते थे। श्री गुरुदेव उनकी आलोचना करते हुए कहते थे, ''इस प्रकार की भक्ति आपको कहीं नहीं ले जायेगी। कठिन परिश्रम करिए। कर्मशील बनिए।'' वे इसे भक्ति की 'वृन्दावन विधि' कहते थे। वे कहा करते थे, ''यह वृन्दावन विधि परिणाम नहीं देगी। यह पर्याप्त नहीं होगी।'' वे उनके माला जपने की नकल करते हुए कहते थे कि इस प्रकार कपड़े के नीचे माला को छुपाकर हाथ से मनके को फिराना पाखण्ड का प्रदर्शन ही है। परन्तु यदि कोई व्यक्ति अत्यधिक परिश्रमशील होता, तो उसे वे कहते थे, ''आप कार्य के प्रति आसक्त हैं। आसक्ति बुरी है। कार्य के प्रति आसक्ति भी बहुत बुरी चीज है। थोड़ा जप करिए, स्वाध्याय करिए। थोड़ा विश्राम करिए।'' परन्तु यदि कोई साधक जप करता एवं कार्य नहीं करता तो वे उसे कहते, ''आप आलसी हैं। आपको कर्मयोग का अभ्यास करना चाहिए। कठिन परिश्रम करिए।''

समस्त सन्तों ने जगत् में भगवान् की विद्यमानता की अनुभूति के साथ ही अपना कार्य-व्यवहार किया। उन्होंने अलौकिक परम सत्ता के अपने अनुभव को इस जगत् के साथ सम्बद्ध किया जिसमें उनका मानवीय व्यक्तित्व क्रियाशील है।

मैंने इससे पहले आपको गुरुदेव की महान् जीवन-गाथा के प्रारम्भिक भाग के विषय में बताया था; वह आपको आधुनिक समय की विचारधारा के अनुसार किसी पौराणिक कथा अथवा अरेबियन नाइट्स की कहानी के समान ही लगेगी जो कि वर्तमान परिस्थितियों से सर्वथा भिन्न होती हैं। वे प्रारम्भिक दिन केवल भोजन-वस्त्र एवं अन्य सुख-सुविधाओं की दृष्टि से नहीं, अपितु भावनात्मक एवं बौद्धिक सन्तुष्टि की दृष्टि से भी अत्यधिक कठिन थे।

उन दिनों गुरुदेव किसी साधक को पुस्तकें पढ़ने की अनुमति नहीं देते थे। कोई कुछ भी नहीं पढ़ता था। सभी केवल सेवा करते थे तथा वही कार्य करते थे जो गुरुदेव ने उनसे करने को कहा था। एक दिन, एक स्वामी जी चोरी-छिपे कैलास आश्रम गये परन्तु गुरुदेव को पता चल गया कि वे कैलास आश्रम गये थे।

गुरुदेव ने उनसे पूछा, ''आप कहाँ गये थे?''

उन स्वामी जी ने उत्तर दिया, ''मैं कैलास आश्रम गया था।''

गुरुदेव ने पूछा, ''किसलिए?''

उन्होंने उत्तर दिया, ''मैं 'विवेकचूड़ामणि' पढ़ने के लिए वहाँ गया था।''

''अब आपके सिर पर सींग उग जायेंगे (अर्थात् अहंकार बढ़ जायेगा)। आपने 'विवेकचूड़ामणि' का अध्ययन प्रारम्भ कर दिया। आप वास्तव में बहुत विद्वान् हैं।'' ऐसा कहकर गुरुदेव वहाँ से चले गये।

गुरुदेव शास्त्राध्ययन की अनुमति नहीं देते थे; इसका कारण यह कदापि नहीं था कि वे बौद्धिक शुद्धता के विरुद्ध थे अपितु वे तो अपने शिष्यों की शास्त्राध्ययन से उत्पन्न अहंकार से रक्षा करना चाहते थे तथा वे उनके इस विद्वताजन्य अभिमान को किसी न किसी विधि द्वारा तुरन्त नष्ट भी कर देते थे।

गुरुदेव कभी प्रवचन अथवा व्याख्यान नहीं देते थे, अत: प्राय: लोग शिकायत करते थे कि वे उन्हें कुछ उपदेश अथवा निर्देश नहीं देते हैं। ''स्वामी जी, हम आपसे कुछ निर्देश-उपदेश प्राप्त करना चाहते हैं'', यह सुनकर गुरुदेव नाराज हो जाते थे।

वे कहते थे, ''आप मुझसे उपदेश चाहते हैं? देखिए, मैं क्या करता हूँ। यही मेरा उपदेश है।'' उनकी दृष्टि में उनका जीवन ही उनका उपदेश था। वे बैठकर श्रोताओं को व्याख्यान नहीं देते थे। उनकी एक नियमित एवं व्यवस्थित दिनचर्या थी—वे प्रतिदिन सायंकालीन सत्संग में सद्ग्रन्थों का श्रवण करते थे। ये सत्संग गर्मियों में उनके कुटीर के बरामदे में तथा सर्दियों में भजन हॉल में आयोजित किये जाते थे तथा ये सूर्यास्त से प्रारम्भ होकर प्राय: रात्रि ग्यारह बजे और कभी-कभी इसके बाद समाप्त होते थे। प्रत्येक सायंकाल गुरुदेव पहाड़ी की घुमावदार पगडण्डी पर चलकर भजन हॉल आते थे क्योंकि उस समय सीढ़ियाँ अथवा पक्का मार्ग नहीं बना था।

मुझे उन दिनों सत्संग एवं साधना-सप्ताह आयोजित करने का थोड़ा अनुभव प्राप्त हुआ था परन्तु ये आजकल आयोजित साधना-सप्ताह से बिल्कुल भिन्न होते थे। जबसे गुरुदेव को यह प्रतीत हुआ कि मैं इस प्रकार का कार्य कर सकता हूँ, उस समय से कई वर्षों तक मैं सत्संग-प्रभारी रहा अर्थात् सत्संग आयोजित करना मेरा उत्तरदायित्व रहा। मैंने एक वर्ष तक भजन हॉल में अखण्ड कीर्तन में भी सेवाएँ दीं। उन दिनों का सत्संग भी अलग प्रकार का था। सत्संग के लिए दरी बिछाना एवं आसन रखना, विभिन्न दिनों के अनुसार विभिन्न देवी-देवताओं की प्रतिमाओं को रखना, दीपक प्रज्वलित करना, उस दिन पढ़ी जाने वाली पुस्तक को रखना तथा सत्संग को प्रारम्भ करना मेरा कर्तव्य था। प्रारम्भिक प्रार्थना एवं स्तोत्र पाठ तथा किसी सद्ग्रन्थ यथा योगवासिष्ठ अथवा श्रीमद्भागवत महापुराण के कुछ अंश के वाचन के बाद, सबके द्वारा भगवन्नाम के गायन की नयी व्यवस्था को उन दिनों अपनाया गया था। अनेक व्यक्ति इसके भय से सत्संग में नहीं आते थे तथा कुछ अन्य कहते थे कि उन्हें सर्दी लगी है अथवा उनका गला खराब है इसलिए वे गा नहीं सकते हैं। गुरुदेव कहते थे, ''गला बैठ गया है अथवा खराब है, तो भी गाइए। इससे आपको छूट नहीं मिलेगी।'' अत: प्रत्येक व्यक्ति को भगवन्नाम का गान करना आवश्यक था। ऐसा नहीं था कि केवल एक या दो व्यक्ति गा रहे हों तथा अन्य अनुसरण कर रहे हों, मात्र सुन रहे हों। सबको महामन्त्र का गान करना होता था।

यह मनुष्य के मन की एक बहुत विशिष्ट प्रवृत्ति है कि कोई स्वस्थ व्यक्ति जो अन्य अवसरों पर तेज आवाज में चिल्लाकर बात करने में समर्थ है, भगवान् के नाम का गायन करते समय उसका गला काम नहीं करेगा। उसकी आवाज नहीं निकलेगी। एक शब्द बोलने में आवाज लड़खड़ायेगी और उसे समझ नहीं आयेगा कि वह क्या कहे। अन्य समय पर उसका कार्य एवं स्थिति कितने ही महत्त्वपूर्ण हों, इस समय वह पूर्णतया असफल हो जाता है। परन्तु गुरुदेव व्यक्तियों के इस संकोच एवं घबराहट को दूर कर देते थे।

हम सब वक्तृत्व कला से अपरिचित थे। हम यह सोचकर काँप जाते थे कि हम तीन व्यक्तियों के सामने भी किस प्रकार बोल पायेंगे? परन्तु स्वामी शिवानन्द जी एक कठोर प्रशिक्षक थे। वे यह सुनिश्चित करते थे कि हम व्याख्यान दें। मैं सार्वजनिक व्याख्यान देने की कला से सर्वथा अनभिज्ञ था। मैं सभा के समक्ष एक वाक्य बोलने में

भी असमर्थ था, और गुरुदेव यह बात जानते थे, इसलिए वे चाहते थे कि मेरी यह दुर्बलता दूर हो। सत्संग के मध्य, सब लोगों के सामने वे अचानक ही मुझसे कहते, ''जाइए तथा कुछ बोलिए।'' मैं कहता था, ''मैं बोल नहीं सकता हूँ।'' तब वे कहते, ''अच्छा, यही बोल दीजिए कि मैं बोल नहीं सकता हूँ। क्या आप इतना भी नहीं बोल सकते हैं? आप कह रहे हैं कि आप बोल नहीं सकते हैं। वहाँ जाइए तथा आसन पर बैठकर इतना कह दीजिए कि आप कुछ बोल नहीं सकते हैं।'' हम किसी प्रकार आसन पर बैठते तथा कुछ-न-कुछ बोल देते। ''बहुत अच्छा! बहुत अच्छा व्याख्यान!'' गुरुदेव इस प्रकार कहते तथा पुरस्कार स्वरूप एक केला देते थे।

गुरुदेव एक व्यक्ति की प्रत्येक क्षमता, उसमें छिपी प्रत्येक सम्भावना को अत्यधिक प्रोत्साहन देते थे। यह उनकी श्रेष्ठता थी, उनकी गहन अन्तर्दृष्टि थी तथा उनकी महानता थी। यदि एक संगीतकार आश्रम में आता, तो वे यह सुनिश्चित करते थे कि उसकी प्रतिभा को पूर्ण अभिव्यक्ति का अवसर प्राप्त हो। एक नृत्यकार आता तो वे उसे भी उतना ही प्रोत्साहित करते थे। यदि कोई प्रोफेसर आश्रम आते तो गुरुदेव कहते, ''प्रोफेसर साहब, आज केवल आप ही व्याख्यान देंगे, अन्य कोई नहीं।'' फिर वे प्रोफेसर अनेक व्याख्यान देते थे। गुरुदेव छोटे-छोटे बालकों को भी विभिन्न प्रकार की प्रस्तुतियाँ देने हेतु प्रोत्साहित करते थे।

श्री गुरुदेव की विशालहृदयता एवं करुणा वस्तुत: भगवान् की महिमा एवं महानता का प्रत्यक्ष प्रमाण थी। जैसे-जैसे समय व्यतीत होता गया, वे लोगों के अधिकाधिक प्रिय होते गये। उनके छोटे से ऑफिस में आयोजित सत्संग को लोग 'शिवानन्द दरबार' कहते थे। भक्तवृन्द शिवानन्द दरबार की महिमा का वर्णन करते हुए सुन्दर भजन गाते थे। वे इस दरबार को भवसागर से पार करने का सर्वश्रेष्ठ साधन मानते थे।

मुक्तहस्त दान उनके विशाल-हृदय की सहज अभिव्यक्ति थी। उस समय आश्रम की कुछ निश्चित संचालन-व्यवस्था नहीं थी। श्री गुरुदेव स्वयं ही सब कुछ थे। यद्यपि एक व्यक्ति आश्रम-सचिव के रूप में कार्य कर रहा था जो अल्पतम संसाधनों से किसी प्रकार सम्पूर्ण आश्रम की व्यवस्था करने का प्रयास करता था। उन दिनों दो समय के भोजन की व्यवस्था करना भी अत्यधिक कठिन था; और उन्हीं दिनों श्री गुरुदेव की दानशीलता भी बढ़ती जा रही थी । वे एक सपेरे को ७५ रुपये दे देते थे। वह सपेरा स्वयं आश्चर्यचकित हो गया। उसे समझ नहीं आ रहा था कि उसके हाथ में ये ७५ रुपये हैं अथवा वह अन्धा हो गया है। उसे कोई दस पैसे भी नहीं देता था परन्तु गुरुदेव ने ७५ रुपये दे दिये। आस-पास खड़े लोग गुरुदेव के इस कार्य को समझ नहीं सकते थे।

श्री गुरुदेव का आर्थिक-सिद्धान्त समस्त आधुनिक अर्थशास्त्रियों की समझ से परे था, यह एक प्रकार से उन अर्थशास्त्रियों की पराजय ही था। गुरुदेव उनकी गणित, अंकगणित नहीं जानते थे। एक दिन गुरुदेव ने अचानक घोषणा कर दी कि वे कल के लिए कुछ भी धन शेष नहीं रखेंगे। जो धन है, उसे उसी दिन खर्च कर दिया जायेगा, आने वाला कल अपनी व्यवस्था स्वयं करेगा। 'कल के लिए कुछ शेष नहीं रखें'—ये किसी कुशल व्यवस्थापक अथवा अर्थशास्त्री के शब्द नहीं हो सकते हैं, ये शब्द एक सन्त के ही हो सकते हैं। इस बात को कोई स्वीकार नहीं कर सकता है कि हमें आने वाले कल के लिए कुछ व्यवस्था नहीं करनी चाहिए। हम कोई भी शिक्षा-उपदेश स्वीकार कर सकते हैं, परन्तु इस उपदेश को स्वीकार नहीं कर सकते हैं क्योंकि हमारे शरीर, हमारे मन एवं हृदय हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति में बाधा बनने वाले इस उपदेश-आदेश के विरुद्ध विद्रोह करते हैं।

मैंने पूर्व में कहा था कि भगवदीय-पुरुष, सन्तजन भगवदीय सत्ता से ओत-प्रोत होते हैं। 'कल के

लिए कुछ शेष नहीं रखें'—हम उनके इस उपदेश को स्वीकार नहीं कर सकते हैं, क्योंकि हमें कल के लिए व्यवस्था करना (धन रखना) आवश्यक नहीं अपितु अत्यावश्यक लगता है। इससे यह प्रमाणित हो जाता है कि हम भगवद्-साक्षात्कार की प्राप्ति हेतु किस सीमा तक योग्य हुए हैं। गुरुदेव हम सबको यह चेतावनी देना चाहते थे कि हम अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के नाम पर कहीं सुख-सुविधाओं में डूब न जायें; यद्यपि हमारी आवश्यकताएँ नगण्य हैं।

मैं घटनाओं का कालक्रमानुसार वर्णन नहीं कर रहा हूँ। मेरे मन में जिस क्रम में विचार उठ रहे हैं, मैं उसी क्रम में कह रहा हूँ। एक बार रात्रि-सत्संग के बाद उन्होंने घोषणास्वरूप कहा, ''क्या कोई ब्रह्मलोक आना चाहेगा?'' उन्होंने पुन: कहा, ''क्या कोई ब्रह्मलोक आना चाहता है?'' हमें ऐसा प्रतीत हुआ कि उस समय कहीं ढोल बजने की ध्वनि हुई। लोग कहते हैं कि यह ध्वनि वैसी ही थी जो भगवान् राम एवं भगवान् कृष्ण के इस धरा को छोड़ कर अपने लोक जाने के समय हुई थी। श्री गुरुदेव जिस ब्रह्मलोक की बात कर रहे थे, जिसके लिए सबको आमन्त्रित कर रहे थे, उनका संकेत भगवद्-लोक-गमन की ओर था। वे हमें ले जाना चाहते थे, परन्तु कोई उनकी बात को समझ नहीं पाया।

श्री गुरुदेव की महासमाधि के बाद आश्रम की सम्पूर्ण संरचना में चमत्कारिक परिवर्तन हुए। मैं इन्हें चमत्कारिक कहता हूँ क्योंकि जब गुरुदेव ने देह-त्याग किया, उस समय आश्रम पूरी तरह ऋणग्रस्त था। आप समझ सकते हैं कि ऋणग्रस्तता से अधिक बुरा कुछ और नहीं हो सकता है। अत: उस समय आश्रम की दशा विकट थी। परन्तु गुरुदेव की महासमाधि के १६ दिन बाद अर्थात् उनकी षोडशी पर हमने ऐसा भव्य उत्सव एवं विशाल भण्डारा आयोजित किया जो इससे पूर्व आश्रम में कभी आयोजित नहीं हुआ था। इस आयोजन हेतु एक बड़ी धनराशि खर्च हुई। हमें वह धन कहाँ से प्राप्त हुआ? आप भी आश्चर्य करेंगे कि जो लोग ऋण के भार से दबे थे, उन्होंने षोडशी पर बिना किसी कठिनाई के इतने भव्य एवं सुन्दर उत्सव का आयोजन किस प्रकार किया। यह कुछ उसी प्रकार का दिव्य स्पर्श था जो भगवान् श्री कृष्ण ने सुदामा की निर्धनता दूर करने हेतु अपने दिव्य कर-कमलों से किया था। उन्होंने ही हमें अप्रत्यक्ष रूप से आशीर्वादित किया। आज हम सब जानते हैं कि श्री गुरुदेव के आश्रम में इतनी अधिक संख्या में व्यक्ति भोजन करते हैं कि हम गणना नहीं कर सकते हैं। भक्त, अतिथि, आगन्तुक तथा अन्य ऐसे व्यक्ति भी भोजन प्राप्त करते हैं जिन्हें हमने कभी देखा भी न हो।

श्री गुरुदेव ने स्वयं का सम्पूर्ण विश्व में विस्तार कर दिया है। यद्यपि वे स्वयं भारत से बाहर नहीं गये, परन्तु आज कोई ऐसा देश नहीं है जहाँ 'स्वामी शिवानन्द' के विषय में लोग नहीं जानते हैं। वे भारत के कुछ भागों के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं नहीं गये। जिस कमरे में वे रहते थे, उसे कमरे की बजाय एक झोपड़ी कहा जा सकता है क्योंकि उसमें कोई सुविधा नहीं थी, यहाँ तक कि वायु के आवागमन की भी उचित व्यवस्था नहीं थी। यह कुटीर आश्रम की सम्पत्ति भी नहीं था। वे जीवनपर्यन्त उसमें ही रहे; उन्होंने आश्रम के सुन्दर भवनों में कभी निवास नहीं किया।

गुरुदेव श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज हम सबके लिए तपस्या के मूर्तिमन्त विग्रह हैं। वे शीतकाल के अतिरिक्त सम्पूर्ण वर्ष पर्यन्त शरीर पर एक छोटा वस्त्र ही पहनते थे, उन्होंने स्वयं अत्यन्त अल्प संसाधन युक्त सरल जीवन व्यतीत किया; परन्तु वे हम सब पर आशीर्वाद की वृष्टि कर रहे हैं जिससे हम समस्त सुख-सुविधाओं का उपभोग कर रहे हैं। हम किस प्रकार सुख भोग रहे हैं, हममें से प्रत्येक को इस पर गहनता से चिन्तन करना चाहिए।

(अनुवादिका : स्वामी गुरुवत्सलानन्द माता जी)

विद्वान-सन्त श्री स्वामी कृष्णानन्द जी महाराज का संक्षिप्त जीवनवृत्त

परम पावन श्री स्वामी चिदानन्द जी महाराज

हमें अपने प्रिय गुरुभाई तथा परम पूजनीय गुरुदेव श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज के चरणों के सह-शिष्य परम श्रद्धेय स्वामी कृष्णानन्द सरस्वती को उनके इस आनन्दप्रद तथा मांगलिक ७५ वें जन्मदिवस के अवसर पर, जिसे हम इस आश्रम में उनके अमृत-महोत्सव के रूप में मना रहे हैं, अपनी हार्दिक शुभकामनाएँ अभिव्यक्त करने में अतीव प्रसन्नता हो रही है।

श्री स्वामी कृष्णानन्द जी हमारे गुरुदेव के पवित्र आश्रम के प्रमुख आध्यात्मिक व्यक्तित्व हैं। उन्होंने सन् १९४४ में दिव्य जीवन संघ के प्रमुखालय में अपने आगमन के समय से ही अगणित आध्यात्मिक जिज्ञासुओं को प्रेरणा, पथ-प्रदर्शन तथा प्रबोधन प्रदान किया है और अपने जीवन के उत्कृष्ट आध्यात्मिक गुणों तथा अपने गहन ज्ञान और विरल विवेक से असंख्य भाग्यशाली आध्यात्मिक साधकों को अपनी ओर आकर्षित किया है।

श्री स्वामी कृष्णानन्द जी अपनी प्रेममयी प्रकृति, साधकों तथा योग-वेदान्त के छात्रों के प्रति दयालुता तथा उनके आध्यात्मिक प्रगति और कल्याण में निष्कपट तीव्र रुचि के कारण आज उन सबके हृदयों में प्रतिष्ठित हैं। इस भाँति पवित्र शिवानन्दाश्रम में हम ही नहीं वरन् विश्व-भर के अनेक देशों के सहस्रों आध्यात्मिक व्यक्ति उनके अमृत महोत्सव के परम सुखमय अवसर पर आनन्द मना रहे होंगे।

प्रियवर स्वामी कृष्णानन्द जी शिवानन्दाश्रम में हमारे संन्यासी भ्रातृ संघ के आकाशदीप तथा दिव्य जीवन संघ के आध्यात्मिक शिक्षकों में प्रमुख के रूप में देदीप्यमान हैं जिन्हें पूजनीय गुरुदेव २० वीं शताब्दी के परवर्ती अर्धशतक में अपने आध्यात्मिक कार्य को अग्रसारित करने के लिए पीछे छोड़ गये। उन्होंने उस आध्यात्मिक कार्य के लिए ही जन्म लिया तथा वे इस आधुनिक युग में एक उद्देश्य वाले व्यक्ति हैं, यह अपनी बाल्यावस्था में वे जिस प्रकार बढ़े तथा जो-कुछ आगे होने वाला था, उसका सुस्पष्ट चिह्न उन्होंने जिस प्रकार अपने जीवन के उषा-काल से ही प्रदर्शित किया, उससे ही स्पष्ट रूप से प्रकट हो जाता है।

जन्म एवं बाल्यावस्था

स्वामी जी अपने पूर्वाश्रम में दक्षिण भारत के पश्चिमी तट पर दक्षिण कनारा मण्डल के रहने वाले थे। वे छह बच्चों वाले परिवार में ज्येष्ठ पुत्र थे। उनके चार कनिष्ठ भ्राता और एक भगिनी थी। उन्होंने एक रुढ़िवादी शिवाल्ली ब्राह्मण माता-पिता के यहाँ जन्म लिया और उनका नाम सुब्बाराव रखा गया।

स्वामी जी के पूर्वज सम्मान्य ब्राह्मण परिवार के थे जिन्हें बनवासी के शासक महाराजा मयूर वर्मा ने (दक्षिण कनारा के) तुलवा ग्राम में बसाया था। यह परिवार कर्मकाण्ड के अनुष्ठान तथा तन्त्रशास्त्र के ज्ञान में सुनिष्णात था और जिन लोगों को उपर्युक्त महाराजा ने समुदाय के धार्मिक अनुष्ठानों के पौरोहित्य तथा तन्त्र-कार्य के लिए प्राधिकृत किया था; उनमें यह परिवार एक था। इस रूप में भक्ति तथा भगवद्-पूजा परिवार की

श्री स्वामी कृष्णानन्द जी महाराज की अमृत-महोत्सव स्मारिका से उद्धृत आलेख

बहुत कुछ परम्परा-सी थी, अतएव इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि ऐसी अत्यन्त विकसित आत्मा ऐसे भक्त, श्रद्धालु तथा धर्मनिष्ठ परिवार में जन्म ले।

दो वर्षीय बालक के रूप में सुब्बाराव (स्वामी कृष्णानन्द) को कुर्ग जिले में तालकावेरी की तीर्थयात्रा पर ले जाया गया। दक्षिण भारत में पावनी कावेरी नदी के उद्गम पर यह पवित्र स्थान है। उन दिनों, उस शताब्दी के प्रथम चतुर्थांश में न तो अच्छे राजपथ थे और न परिवहन-व्यवस्था ही उपलब्ध थी; अतएव धर्मनिष्ठ माता-पिता ने छोटे शिशु सुब्बाराव को साथ लिये हुए तीर्थयात्रा की सम्पूर्ण दूरी पैदल ही तय की। इसके आगामी वर्ष में माता-पिता उन्हें सप्तगिरि के प्रसिद्ध मन्दिर तिरुपति में ले गये। बालक सुब्बाराव जब पाँच वर्ष के थे तब अपने पितामह के साथ एक बार पुन: तिरुपति गये और वेंकटेश्वर भगवान् के दर्शन किये। उसके बाद उन्होंने अपना गम्भीर विद्यार्थी-जीवन आरम्भ किया।

पुत्तूर में शिक्षा

शिक्षा के क्षेत्र में वे प्रत्येक कक्षा में अपने सभी सहपाठियों से आगे थे। उन्होंने प्रारम्भिक शिक्षा पुत्तूर नगर के डर्बे में सेण्ट फ्रांसिस जैवियर स्कूल में प्राप्त की। उन्होंने इस पाठशाला में पंचम कक्षा तक अध्ययन किया और एस. एस. एल. सी. तक उनकी परवर्ती शिक्षा पुत्तूर के बोर्ड हाईस्कूल में हुई। इस समय परिवार आर्थिक दृष्टि से कठिन काल से गुजर रहा था, किन्तु युवक सुब्बाराव की अध्ययन में प्रतिभा के कारण शिक्षा-विभाग के अधिकारी-वर्ग ने, जो अध्ययन में उनकी महती योग्यता से सन्तुष्ट था, उन्हें शिक्षा-शुल्क तथा एवंविध अन्य देयों से पूर्ण छूट दे रखी थी। सुब्बाराव उच्चतम अंक प्राप्त किया करते थे तथा कक्षा में सर्वश्रेष्ठ तथा प्रथम छात्र हुआ करते थे। वे विद्यालय के वाद-विवाद में भी सम्मिलित हुआ करते थे जो अँगरेजी भाषा में संचालित किये जाते थे। एक बार वार्षिक निरीक्षण के समय जिला-अधिकारी युवक सुब्बाराव की ओजस्वी वाग्मिता पर स्तम्भित रह गया और इस युवक छात्र द्वारा प्रदर्शित व्यंजना-शक्ति से अत्यधिक प्रभावित हुआ।

सुब्बाराव का संस्कृत भाषा से बड़ा अनुराग था और वे इसके अध्ययन में गहन रुचि लेते थे। कक्षा में जो शिक्षा दी जाती थी उससे ही सन्तुष्ट न रह कर युवक सुब्बाराव ने अमरकोष तथा अन्य पाठ्य पुस्तकों की सहायता से संस्कृत का गम्भीर स्वाध्याय आरम्भ कर दिया। जिस किसी भी संस्कृत पण्डित से संयोगवश मिलते उससे वे उत्सुकतापूर्वक मार्गदर्शन प्राप्त करते थे। इस शास्त्रीय भाषा को सीखने के लिए उनमें सहज जन्मजात प्रवृत्ति और इसकी उनमें अन्तर्जात प्रतिभा थी। इसके परिणामस्वरूप उन्होंने इस अध्ययन में आशु प्रगति की और जब वे उच्च विद्यालय में थे, उन्होंने संस्कृत भाषा में कविताओं की रचना की । विद्यालय में अध्ययन के साथ-ही-साथ उन्होंने अपने पिता जी से जो स्वयं संस्कृत तथा पवित्र धर्मग्रन्थों में निष्णात थे, ऋग्वेद के सूक्तों, पवनाम आदि की शिक्षा ग्रहण की। किन्तु उनकी स्थिति 'क्रीड़ा नहीं, केवल कार्य' नहीं थी और वे ग्रन्थ-कीट नहीं थे। सुब्बाराव को युवक विद्यार्थी के रूप में अपने कनिष्ठ भ्राताओं और मित्रों के साथ रामायण का अभिनय करना प्रियकर था। सुब्बाराव स्वयं राम का, उनके लघु भ्राता लक्ष्मण अथवा सीता का अभिनय करते थे और दूसरों को अन्य पात्रों की उपयुक्त भूमिका दी जाती थी। इस भाँति उन्होंने एक मण्डली संगठित की। वे इस अभिनय को मध्याह्नकालीन अवकाश के समय अथवा स्कूल के समय के बाद वृक्ष की शाखाओं से

निर्मित धनुष-बाण के साथ संचालित किया करते थे। वे इस अभिनय से आनन्द प्राप्त करते थे और दूसरे भी ऐसा ही आनन्द उठाते थे।

शास्त्राध्ययन के प्रति प्रेम

उनकी प्रकृति का गम्भीरतर आध्यात्मिक पहलू इस समय ही उनके आचरण में प्रकाशित होने लगा था। संस्कृत का अध्ययन आरम्भ करने के पश्चात् उन्होंने भगवद्गीता का अध्ययन भी स्वेच्छया आरम्भ कर दिया। उनकी विचार-शक्ति तथा असाधारण स्मरण-शक्ति ऐसी थी कि उन्होंने सम्पूर्ण गीता कण्ठस्थ कर ली और उसे प्रतिदिन दोहराने लगे। अवकाश के दिनों में वे इस पवित्र ग्रन्थ का अर्थ अपनी माता तथा अपने कनिष्ठ भाइयों को समझाते थे। उस समय की उनकी आध्यात्मिक स्थिति के सम्बन्ध में यह स्मरणीय है कि यद्यपि परिवार का सम्बन्ध मध्व-सम्प्रदाय से था तथा परिवार के सदस्य श्री मध्वाचार्य के द्वैत-दर्शन के अनुयायी थे तथापि युवक सुब्बाराव किसी तरह शंकराचार्य के शुद्धाद्वैत-दर्शन की ओर शनैः-शनैः अधिकाधिक आकर्षित होने लगे। वे शंकराचार्य की विवेक-चूड़ामणि तथा उपनिषद् भाष्य का अध्ययन करने लगे। उनमें मठवासीय जीवन की प्रवृत्ति विकसित हुई तथा एकान्त की कामना और बड़ी भीड़ अथवा लोगों से मिलने-जुलने से अरुचि का विकास हुआ।

उस समय पुत्तूर में बैंदुर शिवराम होल्ला नामक एक बहुत ही सुसंस्कृत तथा बहुश्रुत विधिजीवी सज्जन रहते थे। उनका धार्मिक पुस्तकों का बहुत अच्छा पुस्तकालय था। युवक जिज्ञासु श्री सुब्बाराव अधिवक्ता श्री होल्ला से मिला करते और उनसे वेद, उपनिषद् और इसी प्रकार के अन्य ग्रन्थ लेते और उनका गहन अध्ययन कर उनके अन्तरंग अर्थ को जानने का प्रयास करते थे। शनैः-शनैः उनकी प्रकृति में कुछ परिवर्तन आकार लेने लगा। युवक के हृदय में मोक्ष तथा त्याग की भावनाएँ उद्बुद्ध होने लगीं। सुब्बाराव यह अधिकाधिक अनुभव करने लगे कि प्रयास करने-योग्य एकमात्र वस्तु है—कैवल्य मोक्ष। इस भाँति उन्हें यह निश्चय हो गया कि यही मानव-जीवन का चरम लक्ष्य है। कभी-कभी वे अपनी भावनाओं को यह कह कर अभिव्यक्त किया करते थे कि वे एक दिन सर्वस्व त्याग कर कैवल्य मोक्ष की खोज में चले जायेंगे; किन्तु घर के लोगों ने उनके इस कथन को अधिक गम्भीरता अथवा शब्दशः स्वीकार नहीं किया।

राजकीय सेवा – एक संक्षिप्त अन्तराल

सुब्बाराव ने सन् १९४३ में एक समय बेलारी जिले के हास्पेट नगर में राजकीय सेवा स्वीकार की; किन्तु यह स्थिति अल्प काल तक ही रही। कहा जाता है कि इस सेवा-काल में यह युवक जिज्ञासु जनों के लिए गीता की कक्षाएँ संचालित करता था। उन्होंने अस्वस्थता के आधार पर अवकाश ग्रहण किया और कुछ समय स्वास्थ्य-लाभ करते हुए वे घर पर ही रहे। उस वर्ष के अन्तिम दिनों में घर में एक मास के आवास के पश्चात् वे घर से चल दिये और यह भाव प्रकट किया कि वे हास्पेट में अपनी राजकीय सेवा का भार पुनः ग्रहण करेंगे; किन्तु वे तुरन्त पवित्र वाराणसी नगर चले गये। उन्होंने वाराणसी में कुछ समय तक वेदों तथा संस्कृत का अध्ययन किया; किन्तु एकान्त और साधना की माँग उन्हें उत्तर की ओर और आगे खींच लायी। अपने माता-पिता को पत्र द्वारा संक्षेप में यह सूचित कर कि वे अब उच्चतर ज्ञान की खोज में जा रहे हैं, उन्होंने वाराणसी से हरिद्वार को और वहाँ से ऋषिकेश को प्रस्थान किया।

शिवानन्द आश्रम में एक साधक के रूप में

सन् १९४४ में ऋषिकेश पहुँचने पर इस प्रतिभाशाली युवक जिज्ञासु ने पुण्यतोया गंगा जी के पावन तट पर अपने गुरु का साक्षात् दर्शन किया। त्याग की भावना से आपूरित युवक सुब्बाराव भगवत्साक्षात्कार के कान्तिमय प्रकाश से आपूरित अपने पूजनीय पावन सद्गुरु श्री स्वामी शिवानन्द से मिले।

परम पावन श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज से, जिनमें इस युवक ने अपने आध्यात्मिक गुरु के दर्शन किये, प्रथम भेंट का वृत्तान्त गुरुदेव ने स्वयं ही रोचक ढंग से अपने एक लेख 'मैं कृष्णानन्द जी पर आश्चर्यचकित हूँ' *द्वारा बतलाया है। यद्यपि सुब्बाराव आत्म-ज्ञान की खोज के लिए समर्पित थे और एक बाल-ज्ञानी थे तथापि वे आश्रम के अधिकारियों द्वारा उनके लिए निर्धारित किसी भी कार्य को हर्षपूर्वक अपने ऊपर लेने में हिचकते नहीं थे। शिवानन्द दातव्य औषधालय को उसकी चिकित्सा सहायता का आश्रय लेने वाले रोगियों की सेवा के लिए एक योग्य व्यक्ति की आवश्यकता थी। इसके लिए स्वामी कृष्णानन्द जी चुने गये। वे इसे अपना परम सौभाग्य समझते थे। वे आश्रम के सत्संग का संचालन करते तथा स्तोत्रोच्चार, धर्मग्रन्थों का पाठ तथा प्रवचन कर उसमें सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते थे। वे मन्त्रों में सुनिष्णात थे, अतएव उन्होंने आश्रम में सम्पन्न किये जाने वाले किसी भी धर्मानुष्ठान के संचालन का उत्तरदायित्व स्वेच्छा से अपने ऊपर ले लिया। शिवानन्द आश्रम में इन दिनों अपनाये गये संन्यास-दीक्षा-धर्मानुष्ठान के मन्त्रों को उन्होंने ही कई स्रोतों से चयन कर संहिताबद्ध किया। वे सभी साधना-सप्ताहों के कार्यक्रम-निर्देशक बने तथा बड़ी कार्यकुशलता से उनका संचालन किया और अपनी समयनिष्ठा, नियमनिष्ठा तथा तीव्र और कठोर कार्य की क्षमता के लिए प्रत्येक साधना-सप्ताह में भाग लेने वाले सहस्रों साधकों की प्रशंसा प्राप्त की। आश्रम में जिस विभाग को अपना मामला ठीक करने के लिए एक सुयोग्य संघटक की आवश्यकता होती तो वह अपने लिए कृष्णानन्द जी की माँग करता। वे इस सब कठोर कार्य के भारी भार के नीचे भी मधुर स्मित धारण किये रह सकते थे और जब इस उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य में संलग्न न रहते तो नितान्त शान्ति से ध्यान कर सकते थे।

उनकी आवश्यकताएँ अल्प थीं और चाह कोई भी नहीं थी। उन्होंने ऐसी मानसिक अवस्था प्राप्त कर ली थी कि संयम उनके लिए स्वागत की वस्तु थी। इन्द्रियों पर आधिपत्य तथा कठोर श्रम से उन्हें स्वयं परम पावन श्री स्वामी शिवानन्द जी से प्रशंसा प्राप्त हुई। श्री गुरुदेव ने १७ सितम्बर १९४५ को साधकों के साथ अपनी वार्ता के समय कहा—''यद्यपि वे युवक हैं, वे वैराग्य से पूर्ण हैं। उन्होंने अपनी जिह्वा को वश में कर लिया है। मैंने उनकी अनेक प्रकार से परीक्षा ली है। उनके प्रवचन में अग्नि (जोश) है। उनके शब्द हृदय से परिस्फुटित होते हैं। वे आध्यात्मिक संस्कारों से युक्त नवयुवक हैं। जिसने अपने पूर्व-जीवन में आध्यात्मिक साधना की होती है, वही ऐसे संस्कारों के साथ जन्म लेता है। उन्होंने अत्यधिक कार्य किया है। उन्होंने संस्कृत की अनेक रचनाओं का अनुवाद किया है।''

संन्यास दीक्षा एवं उसके पश्चात्

सुब्बाराव ने १४ जनवरी १९४६ को पवित्र मकर-संक्रान्ति के दिन संन्यास-आश्रम में प्रवेश किया और तब से वे श्री स्वामी कृष्णानन्द सरस्वती के नाम से

*'दिव्य जीवन' पत्रिका के अप्रैल २०२१ अंक में प्रकाशित

विश्रुत हुए। उन्होंने स्वयं कहा कि जब श्री गुरुदेव ने दिव्य महावाक्यों का उच्चारण किया तो उन्होंने अपने अन्दर एक रहस्यमय परिवर्तन घटित होते हुए अनुभव किया।

यद्यपि वे इस दीक्षा के पश्चात् भी आश्रम के कार्य में सक्रिय रूप से भाग लेते रहे; किन्तु उनमें प्राय: एक अगोचर परिवर्तन था। उनके सम्मुख स्वत: तथा चमत्कारी रूप से काम के नवीन मार्ग खुल गये। सेवा ने नया मोड़ लिया। उन्होंने प्रवचन और लेखन-कार्य आरम्भ कर दिया। यह कोई नहीं जानता कि यह कार्य उनके पास कैसे आया और कैसे दूसरे विभागों का कार्य उनसे छूट गया और कैसे गुरु होने का दायित्व उन पर डाला गया। यहाँ ही हम विधाता के रहस्यमय हाथ को, प्रभु की इच्छा को सुस्पष्ट रूप से कार्य करते हुए देखते हैं। युवक स्वामी में प्रतिदिन अधिकाधिक आभा का, अधिकाधिक मौन तथा अल्पभाषिता का, अधिकाधिक अन्तर्दर्शिता तथा चिन्तनशीलता का तथा अधिकाधिक भागवत पुरुष की गरिमा का विकास होने लगा। वे बहुत पहले ही आन्तरिक एकान्तवास की कला में प्रवीण हो चुके थे। अब उन्होंने बाह्य एकान्तवास का भी आश्रय लेना आरम्भ कर दिया। आश्रम के इधर-उधर के वन की निस्तब्धता ने उन्हें आकर्षित किया। वे भगवान् का चिन्तन करते थे। भागवत-चेतना ने उन्हें अनेक रात्रियाँ अनिद्र रखा। वे शीघ्र ही नाम-रूप-मय जगत् के प्रति अन्धे तथा सांसारिक चर्चाओं के प्रति बहरे बन गये। उन्हें जब कभी अपने कुटीर से बाहर जाना होता तो विद्युत् गति से जाते थे, उनकी दृष्टि अपने सम्मुख भूमि पर ही स्थिर रहती थी। वे वेदान्त के सत्यों की उत्सुकतापूर्वक चर्चा किया करते, साधकों की शंकाओं को ध्यानपूर्वक सुनते और प्रसन्नतापूर्वक उनका समाधान करते थे, किन्तु सांसारिक विषय उनके निकट फटकने का साहस नहीं करते थे। संसार में, पुरुषों और महिलाओं के मध्य रहते हुए भी वे उनसे बहुत दूर तथा ऊपर थे, सांसारिक विषयों की पहुँच से दूर थे। वे उस परम सत्ता से संलाप करने के लिए बहुधा मानव-आवास से दूर चले जाते थे। उनमें त्याग की अग्नि ऐसी प्रखर थी, उनमें ऐसी आध्यात्मिक उत्कण्ठा थी कि उन्हें आने वाली कठिनाइयों का कोई विचार ही नहीं था। यह उन्हें मानव-आवास से दूर, बहुत दूर और अधिक घने जंगलों के एकान्तवास खोजने में भयभीत बना कर कभी रोक नहीं सका। अन्य सभी समयों में वे उग्र प्रवृत्ति में मग्न रहते। ध्यान तथा अध्ययन, एकान्तवास तथा नि:स्वार्थ सेवा—ये सब साथ-साथ चलते थे।

तब वह महान् दिवस आया। सन् १९४८ में किसी दिन उन्हें, जैसे कि वे कहते हैं, सत्य की तड़ित झलक मिली। वे उसमें ऐसे खो गये कि उसके पश्चात् वे पर्याप्त समय तक किसी भी विषय में रुचि नहीं लेते थे। उनका व्यवहार पहले ही अल्पभाषी तथा शान्त था, अब वह और भी गम्भीर हो गया। कई महीनों तक उन्होंने अपने को एक कमरे में बन्द रखा और किसी से किसी भी विषय में एक शब्द नहीं उच्चारण किया। उन्होंने कभी कुछ नहीं माँगा। कुछ बोलने की उनमें कोई इच्छा ही नहीं थी। अयाचित रूप से जो-कुछ आ जाता, उसे ही वे स्वीकार करते थे। वे सदा आनन्दपूर्ण तथा शान्तिमय रहते थे।

स्वामी कृष्णानन्द जी के इस अवधि से, जिसे हम 'संकेन्द्रित भागवत चेतना' कह सकते हैं, निगर्मन का योग-वेदान्त अरण्य अकादमी की स्थापना कर स्वागत किया गया। श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज ने श्री स्वामी कृष्णानन्द जी महाराज को तुरन्त इसमें वेदान्त का प्राध्यापक नियुक्त किया। उनके शब्दो में पहले भी अग्नि थी, अब उनमें ऐसी स्पष्टता थी जो सत्य के पूर्ण

बोध की स्पष्ट बोधक थी। शब्द बोधप्रद थे। वे ऐसा बोलते मानो अधिकार-सम्पन्न हों।

वे आज जैसे हैं

सन् १९४८ के पश्चात् स्वामी कृष्णानन्द जी महाराज की कहानी सहज समाधि-अवस्था का उपभोग करने वाले जीवन्मुक्त की कहानी है। यह जड़भरत की कहानी की पुनरावृत्ति है। वे शिवानन्द आश्रम में शान्ति और आनन्द विकीर्ण करते हुए निरन्तर आत्मचेतना की अवस्था में निवास करते हैं। वे स्वयं यह या वह कार्य नहीं करना चाहते, पर सभी सेवाओं का स्वागत करते हैं। जब पुष्प प्रस्फुटित होता है तो भ्रमर उसके पास दौड़े चले आते हैं, उन्हें निमन्त्रण की आवश्यकता नहीं होती। इसी भाँति कृष्णानन्द जी ने बिना किंचित् आडम्बर के विश्व के सभी भागों से अनेक साधकों तथा सत्य के जिज्ञासुओं को अपनी ओर आकर्षित किया है, उन सबके लिए वे गुरु बन गये हैं। वे साधकों का न केवल ज्ञानयोग तथा वेदान्त-साधना में अपितु योग की अन्य शाखाओं में भी पथ-प्रदर्शन करते हैं। वे स्वयं हठयोग में निपुण, राजयोग के विशेषज्ञ तथा भगवान् कृष्ण के परम भक्त हैं। वे परम पावन श्री शिवानन्द जी महाराज द्वारा प्रस्तुत समन्वय-योग के विशेषज्ञ हैं और आज गुरुदेव की अलौकिक प्रतिकृति हैं।

हरि ॐ तत् सत्।

गीता आशा, सान्त्वना, शान्ति तथा इन सबसे अधिक, मनुष्य में अन्तर्भूत दिव्य तत्त्व का सन्देश है। यह प्रत्येक व्यक्ति की समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करती है और उसे अभय प्रदान करती है। यह उसे दुःख-दारिद्र्य के रसातल से ऊपर उठा कर अमरता तथा शाश्वत आनन्द के शिखर पर प्रतिष्ठित कर देती है। यह हमारे समक्ष जीवन के प्रति हिन्दू-दृष्टिकोण की संक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुत करती है। मानव-जीवन के बाह्य पक्ष पर रेखांकित उद्वेलनों के होते हुए भी भारत के अन्तरतम में समस्वरता और एकता का रुझान विद्यमान है। भारतीय शान्तिप्रिय तथा भगवद्-प्रेमी होते हैं। भारतीय संस्कृति के ज्योति-स्तम्भ साधु-सन्त तथा अवतार ही भारत के महान् पुरुष हैं। मानव-चरित्र को सम्यक् दिशा प्रदान करने वाले भव्य धार्मिक आदर्शों, लोगों को सर्वोच्च पूर्णता के उत्तुंग शिखर पर अधिष्ठित करने वाले आचार-शास्त्र तथा नैतिकता के उदात्त सिद्धान्तों और मनुष्य को देवत्व के स्तर तक पहुँचाने वाले तथा राष्ट्रों के आध्यात्मिक जीवन का निर्देशन करने वाले आध्यात्मिक और उत्कृष्टतम सत्यों का प्रादुर्भाव भारत में ही हुआ था। इतिहास में हमारा राष्ट्र भारत जब कभी भी आपत्तियों से आक्रान्त हुआ, तब भारतीय संस्कृति ने ही इसके अस्तित्व-रक्षण का उत्तरदायित्व वहन किया है। भगवद्गीता, जो उपनिषदों के उपदेशामृत का सारतत्त्व है, भारतीय जीवन का व्यावहारिक अनुदेश है और सर्वभूतों के कल्याण के लिए भारत यह निधि विश्व को प्रदान करता है। श्रीकृष्ण पूर्ण मानव के आदर्श, सगुण ईश्वर, साक्षात् सच्चिदानन्द, पूर्णावतार एवं संस्कृति, ज्ञान, शक्ति तथा आनन्द की पराकाष्ठा स्वरूप हैं। वे गीता के माध्यम से विश्व को उच्चतम संस्कृति तथा आध्यात्मिक ज्ञान का सन्देश प्रदान करते हैं। यह भारत तथा विश्व के लिए गौरव की बात है कि गीता आत्माहुति, अनासक्ति और ईश्वर के प्रति आत्म-समर्पण की भावना से गृहस्थाश्रम में रह कर कर्म करते हुए लोगों को भी मनुष्य तथा ईश्वर के तादात्म्य के उदात्त आदर्श से अनुप्राणित किया करती है।

स्वामी शिवानन्द

तिरेसठ नयनार सन्त :

मूर्ति नयनार

परम पावन श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज

भगवान् शिव की चन्दन के साथ पूजा करना, शिवलिंग का चन्दन से अभिषेक करना और शिवलिंग के सब ओर चन्दन का लेप करना, इसे भगवान् शिव की सर्वोत्तम पूजा माना जाता है। इस प्रकार की पूजा मूर्ति नयनार द्वारा की गयी। उनका जन्म पाण्ड्य के राज्य-काल में मदुरै में हुआ। वह जाति से वैश्य थे। उनमें भगवान् शिव के प्रति अगाध भक्ति थी। वह प्रतिदिन चन्दन घिस कर भगवान् को समर्पित किया करते थे।

उस समय नगर पर कर्नाटक के राजा ने आक्रमण कर दिया और युद्ध में पाण्ड्य राजा पराजित हो गया। अब कर्नाटक का राजा पाण्ड्य राजा बन गया। वह जैन धर्म का अनुयायी था। वह शैव मत को वहाँ से निर्मूल कर के अपना जैन मत स्थापित करना चाहता था। उसने शिव-भक्तों को उत्पीड़ित करना आरम्भ कर दिया। मूर्ति नयनार को भी अत्यधिक अत्याचारों का सामना करना पड़ा। किन्तु इन सब प्रताड़नाओं से वह तनिक भी विचलित न हुए और भगवान् शिव की उसी प्रकार चन्दन लेप से पूजा करते रहे।

राजा ने मूर्ति नयनार को जैन मत में परिवर्तित करने के विचार से ऐसे नियम बना दिये कि मदुरै में चन्दन की लकड़ी प्राप्त कर पाना असम्भव हो गया। इससे तो नयनार अत्यन्त व्याकुल हो गये। उन्होंने कातर हृदय से भगवान् से प्रार्थना की : ''हे करुणासागर, यह देश एक ऐसे अत्याचारी शासक के अधीन हो गया है जो आपके भक्तों का विनाश करने पर तुला हुआ है। हमारा सौभाग्य कब ऐसा होगा कि यहाँ ऐसा शासक हो जो आपका भक्त हो?'' नयनार को ज्ञात था कि लोग भयवश तथा राजा का कृपापात्र बनने हेतु राजा का अनुसरण करेंगे, इसीलिए वे चाहते थे कि राजा शिव-भक्त हो।

वे दिन-भर चन्दन की खोज में चारों ओर भटकते रहे कि भगवान् की पूजा के लिए थोड़ा सा ही चन्दन कहीं से मिल जाये, किन्तु सफल न हुए। भग्न-हृदय सहित वे मन्दिर पहुँचे और तभी उन्हें एक अद्भुत उपाय सूझा। उन्होंने अपनी कोहनी को (चन्दन के स्थान पर) घिसना आरम्भ कर दिया। हाथ से रक्त की धारा प्रवाहित होने लगी। भगवान् शिव उनकी अगाध भक्ति को देख कर अत्यन्त प्रसन्न हुए। आकाशवाणी हुई : ''हे भले व्यक्ति, मैं तुम्हारी भक्ति से अति प्रसन्न हूँ। मेरा अनुरोध है कि अपनी कोहनी को घिसना बन्द कर दो। तुम्हारे सभी सन्ताप दूर कर दिये जायेंगे। तुम यहाँ के शासन की बागडोर सँभालो। देश में दीर्घ काल तक न्याय एवं बुद्धिमत्तापूर्वक राज्य करने के उपरान्त तुम मेरे लोक में आ जाओगे।'' यह आकाशवाणी सुन कर और अपनी कोहनी को पहले की भाँति बिलकुल ठीक देख कर नयनार आश्चर्यचकित रह गये।

मूर्ति नयनार को राज्य सुख-भोग की लालसा नहीं थी, किन्तु भगवान् की यही इच्छा थी। उसी रात्रि उस आततायी राजा की मृत्यु हो गयी। आगामी दिवस मन्त्रियों ने पुरानी परम्परानुसार राजमहल के हाथी को नया राजा चयन करने के लिए छोड़ दिया। हाथी मन्दिर की ओर आगे बढ़ रहा था। मूर्ति नयनार पूजा करने मन्दिर जा रहे थे। हाथी आगे आ कर उनके सामने झुका और फिर उन्हें उठा कर अपनी पीठ पर बैठा कर राजमहल की ओर लौट गया।

राजा बनने के लिए मन्त्री उनसे अनुनय-विनय करने लगे। नयनार ने यह अनुबन्धक शर्त रखी : ''यदि आप मुझे अपना सम्राट् बनाना चाहते हैं तो मैं राजसी स्नान नहीं करूँगा, अपितु केवल पावन भस्म से ही स्नान करूँगा। केवल रुद्राक्ष ही मेरे आभूषण होंगे और जटाएँ ही मेरा मुकुट होंगी। मेरी एकमात्र इच्छा यह होगी कि समस्त प्रजा के हृदयों में भगवान् शिव ही सिंहासनारूढ़ हों।'' मन्त्रियों ने अत्यन्त सन्तोषपूर्वक सहर्ष सभी शर्तें मान लीं। मूर्ति नयनार ने अत्यन्त विवेक एवं न्यायपूर्वक दीर्घ काल तक राज्य पर शासन किया और फिर अन्ततः शिवलोक को प्राप्त किया।

(अनुवादिका : स्वामी शिवाश्रितानन्द माता जी)

आपका शान्ति-दूत :

प्रेम और भक्ति : भक्ति योग

परम पावन श्री स्वामी चिदानन्द जी महाराज

जो भगवान् से प्रेम करते हैं और जो भगवद्-साक्षात्कार की प्राप्ति के लिए सतत प्रयत्नशील हैं ऐसे साधकों एवं सन्तों का सान्निध्य प्राप्त होना एक अत्यन्त अद्भुत अनुभव है। सत्संग में सम्मिलित होने से आप भगवान् के साथ अपने आन्तरिक आध्यात्मिक सम्बन्ध की पुनर्स्थापना में प्रयत्नशील होते हैं। सत्संग का अर्थ और उद्देश्य, नाम-रूपों वाले इस अस्थायी प्रपंच के पीछे निहित जो शाश्वत सत्ता है, उसके सान्निध्य में पहुँचना है। आप तब अपने उस अन्तःस्थित परम सत्य के साथ आध्यात्मिक सम्बन्ध को पुनःप्रतिष्ठित करते हैं जो वस्तुतः आपके अस्तित्व का अन्तरतम परम आत्मा है। यह जीवन-शक्ति के पुनरारम्भ की प्रक्रिया है—एक आध्यात्मिक पुनर्शक्तिकरण की प्रक्रिया है जिसके द्वारा आप इस समस्त परिवर्तनशील प्रपंच के पीछे उस अपरिवर्तनशील के प्रति अपनी आन्तरिक जागरूकता को विकसित करते हैं। आप अपने उस जीवन के लक्ष्य के सम्बन्ध की एक बार पुनःस्थापना करते हैं जो वास्तव में आपके अस्तित्व का अदृश्य स्रोत एवं मूल आधार है।

सत्संग आपकी चेतना को क्षणभंगुर एवं असत्य वस्तु-पदार्थों से दूर उस मूलभूत सत्य की ओर ले जाता है जो कि इन समस्त द्रष्टव्य वस्तु-पदार्थों का आधार है। इस अति महत्त्वपूर्ण आध्यात्मिक सम्बन्ध में ही आपके जीवन की वास्तविक परिपूर्णता सुनिश्चित है। यदि इस आन्तरिक सम्बन्ध को जीवन में से निकाल दिया जाये तो आपका जीवन रसहीन एवं सारहीन हो जायेगा। तब इस जीवन में अन्धकार, निराशा, अवसाद और रिक्तता आ जायेगी। जो व्यक्ति परमात्मा के साथ अपना सम्पर्क खो देता है, उसका जीवन ही निरर्थक हो जाता है क्योंकि परमात्मा ही तो उसके अस्तित्व का मूल आधार हैं। वह आपके अस्तित्व का स्रोत हैं और उनके साथ सम्बन्ध होना ही वह मुख्य तथ्य है जो जीवन को महत्ता, गहनता और परिपूर्णता की अनुभूति प्रदान करता है।

फल, फूल और पत्ते वृक्ष के शिखर पर होते हैं और वे सब जीवनी-शक्ति से जीवन्त रहते हैं। इन सबको जीवन देने और विकसित करने वाली वृक्ष की जड़ें धरती के नीचे दबी होती हैं। वृक्ष के ये विभिन्न अंग भले ही पृथ्वी से कितनी भी ऊँचाई पर हों, उनका सम्बन्ध उनके अस्तित्व के मूल स्रोत से जुड़ा होता है। यदि आप फूलों का एक गुच्छा तोड़ कर उनको अपनी जीवन-शक्ति से पृथक् कर दें तो शीघ्र ही वह निर्जीव हो कर सूख जायेगा। इसी प्रकार, आपके अपने जीवन में जो-कुछ भी सकारात्मकता है, उस सबका आपके अन्तर्निहित एक भण्डार है जिससे आपका जीवन प्रफुल्लित होता है। इसे आत्मा कहते हैं, आप इसे कुछ भी नाम दें; किन्तु इसकी उपेक्षा करने का मूल्य आपकी अपनी सुख, शान्ति और परिपूर्णता की अनुभूति को खो देना है।

जीवन के इस महत्त्वपूर्ण तथ्य को एक महान् सन्त ने इस संक्षिप्त वाक्योक्ति में इस प्रकार अभिव्यक्त कर दिया है, ''भगवन्नाम-स्मरण जीवन है और भगवद्-विस्मृति ही मृत्यु है।'' जब व्यक्ति भगवान् के साथ सम्पर्क खो कर स्वयं को अलग कर लेता है तब उसी क्षण से उसके जीवन में गतिहीनता एवं निस्तेजता आ जाती है। जब व्यक्ति अपने मूल स्रोत से अर्थात् उस महान् वैश्व चेतना से सम्बन्ध खो देता है तब उसकी छोटी 'मैं' की चेतना से उत्पन्न होने वाले समस्त दुःखों, कष्टों और संकटों से भर कर उसका जीवन एक भार बन कर रह जाता है। इस तथ्य के प्रति जागरूक

रहें कि अपने वास्तविक निज स्वरूप में आप सदैव अपने अस्तित्व के मूल स्रोत से जुड़े हुए हैं और फिर आप अपनी इस जागरूकता को तब तक निरन्तर विकसित करते जायें जब तक कि भगवान् आपकी चेतना का प्रमुख अंग नहीं बन जाते। यही भक्ति है, और इस जीवन को वास्तविक रूप में परिपूर्ण बनाने का तथा इस परिवर्तनशील सांसारिक जीवन की अपूर्णताओं एवं दोषों से परे जाने का यही मार्ग है।

मनुष्य कितना अन्धा है; वह कभी देखता ही नहीं; माया के कारण प्रतीतियाँ सत्य जैसी दिखायी देती हैं और इस प्रकार मनुष्य सत्य को भूला रहता है। सभी धर्मों का लक्ष्य इस सत्य को पुनः प्रतिष्ठित करना है। ''मेरा सम्बन्ध इस प्रपंच से सहस्र गुणा अधिक भगवान् के साथ है। संसार के साथ तो मेरा सम्बन्ध केवल कुछ क्षणों के लिए ही है। एक समय आयेगा जब इस प्रातिभासिक बाह्य जगत् से मेरा सम्बन्ध समाप्त हो जायेगा, और मैं जहाँ से आया था, पुनः उसी आयाम में वापिस लौट जाऊँगा।'' समस्त धर्मों, मत-मतान्तरों और सभी सन्त-महात्माओं का यही महान् लक्ष्य रहा है : इस सम्बन्ध को आपके निजी जीवन में सक्रिय एवं जीवन्त यथार्थ बनाना। प्रत्येक धर्म का, योग का और प्रत्येक शिक्षक एवं गुरु द्वारा आविष्कार की जाने वाली प्रत्येक प्रविधि का यही उद्देश्य एवं अर्थ है—उस परम तत्त्व के साथ आपके सम्बन्ध की परिपूर्णता को पुनः प्रतिष्ठित करना।

इस संसार में आप अन्य किसी भी वस्तु के लिए यह नहीं कह सकते कि, 'यह मेरी है, और मैं इसका हूँ!' आपका यह शरीर जिसमें आप अभी इस समय हैं और जिसके साथ आपका पूर्णतया तादात्म्य है, जो आपकी पहचान बना हुआ है, इस शरीर तक के लिए भी आप ऐसा नहीं कह सकते क्योंकि यह शरीर एक दिन आपका साथ छोड़ कर चला जायेगा। फिर भी यदि आप शरीर को अपना कहते हैं, तो वास्तव में इस पर आपका कितना नियन्त्रण है? यदि आप कोई ऐसा हानिकारक खाद्यपदार्थ खा लेते हैं जो आपकी आँतों को हानि पहुँचाने वाला हो, तो क्या आप आँतों को कह सकते हैं, ''रुक जाओ, तुम पर मेरा अधिकार है, जुलाब, तुम मत आओ!'' आपकी बात नहीं सुनी जायेगी और आपको दशों बार शौच के लिए भागना पड़ेगा। आपके पास भले ही पी-एच. डी. की तीन-तीन डिग्रियाँ क्यों न हों अथवा आप भारत के राष्ट्रपति भी क्यों न हों, किन्तु आपके अपने शरीर पर आपका बहुत ही अल्प नियन्त्रण है। यदि आप इसके प्राकृतिक नियमों का पालन करते हैं और इसके साथ उचित व्यवहार करते हैं, तब तो यह आपका साथ देगा; किन्तु यदि इसके नियमों में से किसी एक के भी विपरीत जायेंगे, तब आपको ज्ञात हो जायेगा कि आपका इस पर कितना नियन्त्रण है!

हमें यह समझ जाना चाहिए कि केवल एक ही के सम्बन्ध में हम यह कह सकते हैं कि, 'हाँ, आप मेरे हैं और मैं आपका हूँ!' और वह एक है, भगवान् के साथ हमारा सम्बन्ध। भगवान् के साथ आपका शाश्वत सम्बन्ध है और भगवान् में ही आप पूर्णरूपेण हैं। जीवन में सबसे अधिक आवश्यकता है स्वयं का उसके साथ घनिष्ठतम सम्बन्ध बनाये रखने की जो कभी नष्ट नहीं होता, क्योंकि नाशवान् समस्त वस्तु-पदार्थों के सम्बन्ध अन्ततः दुःखों से भरे हुए हैं। यह यर्थाथतः सत्य है। यदि आप इस पर विचार करेंगे तो आपकी सहज बुद्धि यह समझा देगी कि नाशवान् के साथ सम्बन्ध अन्ततोगत्वा दुःख में समाप्त होने वाला है और केवल शाश्वत के साथ सम्बन्ध ही आपके व्यक्तित्व के अन्तरतम की गहराइयों तक आनन्द प्रदान करने वाला है। यह हाड़-मांस का शरीर आप नहीं हैं, यह नित्य परिवर्तनशील मन भी आप नहीं हैं, यह बुद्धि और यह मिथ्या छोटी मैं वाला व्यक्तित्व भी आप नहीं हैं—आप अमर आत्मा हैं और उस अमर-अविनाशी परमात्मा में ही आप सच्चा सुख पा सकते हैं।

(क्रमशः)

(अनुवादिका : स्वामी शिवाश्रितानन्द माता जी)

आध्यात्मिकता का सत्य-स्वरूप :

मनोनिग्रह आत्म-संयम है

परम पावन श्री स्वामी कृष्णानन्द जी महाराज

हम मन की वृत्ति नामक परिवर्तनों की चर्चा कर रहे थे, तथा योग इन्हीं को नियन्त्रित तथा इन पर प्रभुत्व स्थापित करने का प्रयास करता है। मन के परिवर्तन अनुभूति अथवा अभिज्ञान की वस्तुएँ नहीं हैं। जिस प्रकार हम संसार की वस्तुओं को देखते हैं, उस प्रकार उन्हें देखा नहीं जा सकता क्योंकि मन कोई वस्तु नहीं है, तथा इसीलिए, इसकी चंचलताएँ भी पदार्थ नहीं हैं जिन्हें देखा जा सके, अनुभव किया जा सके अथवा सामान्य रूप में जाना जा सके। इसी कारण आत्म-संयम कठिन है।

निग्रह अथवा संयम, जैसा हम समझते हैं, किसी बाह्य वस्तु पर शक्ति का प्रयोग करना है। हम नहीं जानते कि स्वयं को प्रभावित अथवा निग्रह करना क्या होता है, यह विचारातीत है। हम आत्म-निग्रह किस प्रकार कर सकते हैं? हम स्वयं से भिन्न नहीं हैं। स्वयं को संयमित करना पुनरुक्ति है, क्योंकि संयम करने की प्रक्रिया में संयम करने वाले तथा संयमित होने वाले के मध्य अन्तर की आवश्यकता है। अन्यथा, निग्रह क्या है, तथा आत्म-संयम होना चाहिए, अथवा मन के परिवर्तनों का संयम होना चाहिए, इससे योग का क्या तात्पर्य है? यही योगाभ्यास की विषमता है। यह विचार भयावह है। योग की सम्पूर्ण प्रक्रिया अन्य कुछ नहीं, वरन् निम्न से उच्चतर आत्म-संयम की प्रगति-शृंखला है। जिस प्रकार आत्मा के अनेक संकेतार्थ और तात्पर्य हैं, तथा उसकी अभिव्यक्ति के स्तर हैं, उसी प्रकार मन अथवा आत्म-संयम की प्रक्रिया के भी विभिन्न चरण हैं। अन्ततः, सम्पूर्ण तकनीक को भली-भाँति समझने की आवश्यकता है।

लोग मनोनिग्रह, वृत्तियों के संयम इत्यादि की बात करते हैं, मानो वे दासों अथवा आश्रितों इत्यादि को नियन्त्रित करने की बात कर रहे हों। यह जितना सरल प्रतीत होता है, उतना सरल नहीं है। मन को नियन्त्रित करना अपने परिचारक को नियन्त्रित करने अथवा मालिक का अपने आश्रितों पर दबाव बनाने के समान कदापि नहीं है। यह, मानो, अद्भुत हवाई-करतब है, एक ऐसा करतब, जो सामान्य व्यक्ति के लिए असम्भव है, क्योंकि योग का कथन मन की चंचलताओं को नियन्त्रित करना है, इसका तात्पर्य है कि इस प्रयास में असाधारण तकनीक अपनानी है। यह असाधारण है क्योंकि मन की चंचलताएँ अथवा वृत्तियाँ निरीक्षण नहीं कर पातीं। उन्हें देखा नहीं जा सकता क्योंकि द्रष्टा ने स्वयं का परिवर्तन के साथ ही तादात्म्य स्थापित कर लिया है। जिसे मनोनियन्त्रित करना है, वही मन के साथ एकाकार हो गया है।

हम मनोवैज्ञानिक व्यक्तित्व हैं, जिसका तात्पर्य है कि मन ने हमारे व्यक्तित्व का रूप धारण कर लिया है। हम मन हैं, तथा हम स्वयं में तथा मन में भेद नहीं करते, यद्यपि हम प्रायः कहते हैं, ''मैं विचार कर रहा हूँ। ये मेरे मत, मेरे विचार, मेरी भावनाएँ हैं'' इत्यादि, मानो विचार, भावनाएँ आदि हमसे बाहर हैं। ये मात्र

अभिव्यक्ति के माध्यम हैं। हमारी भावनाएँ हम ही हैं। हमारी भावनाएँ हमसे बाहर अथवा भिन्न नहीं हैं। अत:, हम इसके साथ कुछ नहीं कर सकते, क्योंकि हम स्वयं के साथ कुछ नहीं कर सकते।

तब, क्या होता है? मनोनिग्रह मन की एकाग्रता की क्रिया है। यह बाह्य संसार में किया जाने वाला कोई कार्य नहीं है। योग कार्य नहीं है। स्पष्ट भाषा-सम्बन्धी अभिव्यक्ति के अभाव के कारण हमें योगाभ्यास के लिए भी 'प्रयास', प्रयत्न, क्रिया-कलाप जैसी शब्दावली का प्रयोग करना पड़ता है। परन्तु, ये भाषा की परिसीमाएँ हैं। हम शब्दों द्वारा सटीक तात्पर्य व्यक्त नहीं कर सकते, क्योंकि शब्द सीमित होते हैं। भाषा की सीमा क्या है? भाषा की अभिव्यक्ति वाक्यों द्वारा होती है, तथा वाक्य व्यक्तिपरक तथा वस्तुनिष्ठ होता है। वाक्य का विधेय (predicate) किसी वस्तु की ओर इंगित करता है जिससे कर्ता (subject) सम्बद्ध होता है, तथा कर्ता का अर्थ विषय के विशेषणात्मक प्रभाव द्वारा परिवर्तित होता है। एक वाक्य में कर्ता तथा विषय योजक (copula) द्वारा सम्बद्ध होते हैं हैं। 'यह डेस्क है' एक वाक्य है। 'यह' कर्ता है, 'है' क्रिया अथवा योजक है, तथा 'डेस्क' विषय (object) है, तथा प्रत्येक वाक्य में ऐसा ही होता है। हम इस प्रकार की अभिव्यक्ति, इस प्रकार की भाषा का प्रयोग परा-अनुभवजन्य वास्तविकताओं, अतीन्द्रिय सत्य को परिभाषित करने में भी प्रयोग करते हैं, जो कर्ता तथा विषय में द्विशाखित नहीं किया जा सकता, तथा, इसीलिए, हमारी वास्तविकता हेतु समस्त परिभाषाएँ उद्देश्य को परिभाषित नहीं कर पातीं। उसी प्रकार, योगाभ्यास नामक प्रयासों की मनोवैज्ञानिक गहराई भाषा की सामान्य अभिव्यक्ति की समझ से परे है।

पतंजलि योग-सूत्रों के अनुसार वृत्तियों अथवा मन की चंचलताओं का नियन्त्रण आवश्यक है। आसन तथा प्राणायाम से परे चरण अत्यन्त दुष्कर हैं। यद्यपि आसन तथा प्राणायाम स्वयं ही कठिन हैं, जो इनके बाद आता है, वह अधिक कठिन है क्योंकि शारीरिक स्थिति, जिसे हम आसन कहते हैं, वह कितना भी कठिन हो, वह किसी न किसी रूप में भौतिक जगत् से सम्बद्ध होता है। शरीर ऐन्द्रिक पदार्थ है, तथा हम शरीर से उसी प्रकार व्यवहार कर सकते हैं, जिस प्रकार हम सांसारिक पदार्थों से व्यवहार करते हैं, जिससे वह हमें अधिक विचलित न करे। हम शारीरिक स्थिति के विभिन्न उपाय समझ सकते हैं क्योंकि किसी वस्तु को समझना कर्ता को समझने जैसा कठिन नहीं है। यही बात प्राणायाम पर लागू होती है। इसमें कोई शंका नहीं कि यद्यपि प्राणायाम शरीर के भीतर होता है, इसका अभ्यास आसन, मुद्रा, बन्ध इत्यादि से अधिक कठिन है, फिर भी यह शारीरिक रूप से प्रत्यक्ष है, तथा हम प्राणायाम के अभ्यास में भी पर्याप्त सीमा तक सफलता प्राप्त कर सकते हैं।

परन्तु, उसके उपरान्त क्या होता है? स्वयं को आसन तथा प्राणायाम में स्थित करने के उपरान्त हमें क्या होता है? यह अत्यन्त कठिन है क्योंकि आगामी चरण पूर्णतया मानसिक हैं, तथा किसी रूप में भी शारीरिक नहीं हैं; तथा क्योंकि आसन तथा प्राणायाम से परे जो चरण पूर्णतया मानसिक हैं, इसका तात्पर्य है कि इन उच्चतर चरणों में हमें स्वयं मन के साथ व्यवहार करना है। जैसा कि हम पूर्व में ही कह चुके हैं, क्योंकि मन हमारे व्यक्तित्व के साथ तादात्म्य स्थापित कर चुका है, तथा

विलोमत:, हम जिस प्रकार शरीर अथवा प्राणों से व्यवहार करते हैं,उसी प्रकार मन के साथ व्यवहार नहीं कर सकते। हम मन के साथ कुछ नहीं कर सकते, यद्यपि आसनों के द्वारा हम शरीर के साथ कुछ कर सकते हैं, तथा प्राणायाम के द्वारा प्राणों के साथ कुछ कर सकते हैं।

मन के साथ कुछ नहीं किया जा सकता, क्योंकि जहाँ मन की बात हो, वहाँ 'करने' जैसा कुछ नहीं होता। चेतना, जो हमारा सहज स्वभाव है, हमारे मानसिक परिवर्तनों को इस प्रकार सजीव करती है कि हम अपने तथा मानसिक परिवर्तनों में अन्तर नहीं कर पाते। एक उपमा द्वारा लोहे की गेंद का उदाहरण दिया जाता है। जब लोहे की गेंद को लाल होने तक तपाया जाता है, हमें लोहा नहीं, अपितु केवल आग दिखायी देती है। जब हम गर्म लोहे की गेंद को स्पर्श करते हैं, वह हमें झुलसा देता है, तथा हम यह सोचते हैं कि लोहे की गेंद ने हमें जला दिया। हमें झुलसाने वाली अग्नि है, लोहे की गेंद नहीं, परन्तु हम एक वस्तु को दूसरे में मिला देते हैं। अग्नि उस गेंद में लोहे के प्रत्येक कण में समायी है, तथा लौह-गेंद का रूप धारण किया है, अथवा विपरीत रूप में हम कह सकते हैं कि गेंद ने अग्नि का रूप धारण कर लिया है। हम यह नहीं जानते कि अग्नि कौन-सी है तथा लोहे की गेंद कौन सी—यद्यपि लौह-गेंद अग्नि नहीं हो सकती तथा अग्नि लौह-गेंद नहीं। इसी प्रकार, मानसिक परिवर्तन चेतना नहीं हो सकते, क्योंकि चेतना परिवर्तित नहीं होती; यह अभेद्य शाश्वत तथ्य है। तब, वह क्या है, जो परिवर्तित हुआ है? वृत्तियों अथवा मन की क्रियाओं से हमारा क्या तात्पर्य है?

हमारे व्यक्तित्व में एक अस्थायी प्रक्रिया गतिमान है, तथा वह प्रक्रिया हमारी चेतना के साथ तादात्म्य स्थापित कर लेती है। वृत्तियों का चेतना द्वारा सजीव होने का यही तात्पर्य है कि जहाँ तक हमारा वास्तविक स्वभाव चेतन-स्वरूप है, हम चेतना हैं; परन्तु जब हमारी पहचान वृत्तियों के माध्यम से होती है, तो हम वृत्ति-रूप हो जाते हैं, हम वृत्तियाँ हैं। अत:, जब हम विचार करते हैं, तो 'मैं' विचार करता है, अन्य कोई नहीं। हम अपनी स्थिति तथा सम्पूर्ण परिस्थिति की विषमता की कल्पना कर सकते हैं। जब पुलिस स्वयं ही चोर बन जायेगी, तो वह चोर को कैसे पहचानेगी? वह स्वयं ही दोषी, तथा स्वयं ही पुलिस भी है। न्यायाधीश मुवक्किल भी है, वास्तव में यह अत्यन्त विषम परिस्थिति है। क्या करना चाहिए, यह समझना कठिन है।

यह सब योग की विषमता/जटिलता का आभास कराने के लिए है। यह भीषण, घृणित, अहंकार-ग्रस्त व्यक्तित्व के लिए अत्यन्त अप्रिय है। यदि यह इतना सहज होता, तो संसार योगियों से भर जाता; परन्तु यह सम्भव नहीं है। कभी-कभी यह मानवोचित ढंग से असम्भव प्रतीत होता है। हमें योग के वास्तविक शिष्य बनने के लिए अतिमानव बनना होगा। एक साधारण मानव योग-शिष्य नहीं बन सकता, क्योंकि हम इसे समझ ही नहीं सकते। यह हमें समझ में नहीं आयेगा क्योंकि समस्या यह है कि हमें स्वयं से व्यवहार करना है, परन्तु हम किसी प्रकार भी स्वयं से व्यवहार नहीं कर सकते, क्योंकि हमारे समस्त कर्म प्रक्रियाएँ हैं, तथा इस व्यवहार में कोई प्रक्रिया नहीं है, क्योंकि योग कोई प्रक्रिया नहीं है, मात्र इसीलिए कि हमें स्वयं से व्यवहार करना है।

(क्रमश:)

(भाषान्तर : मेधा सचदेव)

मानव से ईश–मानव :

गुरुदेव के चमत्कार

श्री एन. अनन्तनारायणन्

(पूर्व–अंक से आगे)

न्यूयार्क से तमारा बोरकौन नाम की एक श्वेत रूसी महिला जो अमरीका में स्थायी रूप से बस गयी थी, ने गुरुदेव के दर्शन होने का विस्तृत वर्णन किया। उसने स्वयं गुरुदेव को लिखा :

''अभी हाल ही में आपश्री के भव्य दर्शन प्राप्त होने का सौभाग्य मिला और पर्याप्त चिन्तन के उपरान्त मैंने इसके सम्बन्ध में आपको पत्र लिखने का निर्णय किया है। योग का विज्ञान और इससे सम्बन्धित अन्य विषयों में बचपन से ही मेरी मुख्य रूप से रुचि रही है और जब मैं अभी अपने जन्म–स्थान चीन में थी, तभी से आपकी पुस्तकों से परिचित हो गयी थी। गत १२ वर्षों से मैं अमरीका में विभिन्न शिक्षकों से योग की शिक्षा प्राप्त करने का प्रयास कर रही हूँ। दुर्भाग्यवश यहाँ सुशिक्षित शिक्षक नहीं हैं। मुझे अत्यन्त प्रसन्नता है कि अब मुझे योगीराज हैरी डिकमैन मिल गये हैं जो कि आपके ही शिष्य हैं।

''अपने निश्चित योगासन कर लेने के उपरान्त मैंने ध्यान करना आरम्भ कर दिया और अचानक देखा कि आपश्री मेरे सम्मुख एक छड़ी पर थोड़ा झुक कर खड़े हुए हैं। यहाँ ये बता देना महत्त्वपूर्ण है कि उस समय मैं आपके विषय में अथवा अन्य किसी भी व्यक्ति के विषय में सोच नहीं रही थी। आपके नेत्रों में एक विशेष प्रकार की ज्योति थी और एक अद्‌भुत प्रकाश आपके चारों ओर व्याप्त था जिससे मैं अत्यधिक प्रभावित हुई थी। इस प्रकाश से आपकी महान् शक्ति झलकती थी जो आन्तरिक लोकों से सम्बन्धित आपके ज्ञान को शब्दों से भी अधिक स्पष्टता से प्रकट कर रही थी।

''उस छवि ने अपनी भुजा ऊँची की और पृष्ठिका के चित्र में हिमाच्छादित पर्वतशिखर की ओर ऐसे संकेत किया जैसे वह मुझे कहना चाहती हो कि गत इतने वर्षों से मैं जो–कुछ चाहती रही हूँ, वह सब वहाँ से प्राप्त हो सकता है। फिर मैंने देखा कि आपश्री के दूसरे हाथ में कमल के फूल की आकृति का काले रंग का धूप–पात्र था, जो एक छोटे से गुम्बद के ऊपर टिका हुआ था और आप उसे मेरी ओर करके हिला रहे थे जिससे धूप के बादलों जैसा धुआँ मेरे चारों ओर छा गया। अचानक आपके चारों ओर काले रंग की लम्बी पोशाकें और नोकीली टोपियाँ पहने हुए बहुत से विचित्र आकार प्रकट हो गये, उन सबने आपश्री के समक्ष झुक कर प्रणाम किया और फिर एक घेरा सा बना लिया जिसके केन्द्र में आप थे और वे सब उसकी परिधि में थे। यह दृश्य कुछ समय तक नेत्रों के समक्ष रहा और यद्यपि कोई भी शब्द बोला नहीं गया था, तथापि यह पूर्णतया वास्तविक था और निश्चित रूप से एक सन्देश देता प्रतीत होता था।''

स्वामी जी को लिखे गये अपने पत्र में तमारा बोरकौन ने जिन आन्तरिक धरातलों का उल्लेख किया था, वह क्या हैं? गुरुदेव ने योग और विज्ञान पर एक विचारणीय लेख जो उनकी पुस्तक, 'प्रैक्टीकल लैसन्ज़

इन योगा' के परिशिष्ट के रूप में प्रकाशित किया गया था, में इन विभिन्न आन्तरिक स्तरों सम्बन्धी प्रचलित बहुत सी गलत धाराणाओं को स्पष्ट किया है :

''आपको यह नहीं समझना चाहिए कि ये विभिन्न धरातल अथवा स्तर इस प्रकार एक-दूसरे के ऊपर टिके हुए हैं जैसे दुकानों में सन्दूक एक-दूसरे के ऊपर रखे होते हैं। विभिन्न तल उसी स्थान में और इसी प्रकार परस्पर एक-दूसरे में मिले हुए रहते हैं जैसे किसी कमरे में हरीकेन लैम्प का प्रकाश, विद्युत् का, गैस का और साधारण तेल के दिये का प्रकाश। प्रत्येक पदार्थ के घनत्व की मात्रा में अन्तर होता है और उस घनता की मात्रा के लिए भिन्न-भिन्न वीथिकाएँ बनायी गयी हैं। ये विभिन्न स्तर कहीं अलग-अलग करके नहीं रखे गये हैं। यदि आप अपनी सूक्ष्म दृष्टि अथवा अतीन्द्रिय दृष्टि को विकसित कर लेते हैं तो आप इन तलों से सम्पर्क बना सकते हैं। इन तलों के सम्बन्ध में ज्ञान अर्जित करने के लिए आपको आकाश की यात्रा करने की आवश्यकता नहीं है। अपने कक्ष के आकाश में ही एक दूसरे में मिले हुए ये सातों तल विद्यमान हैं। नीचे के तल वाले व्यक्ति ऊपर के तल में निवास करने वाले व्यक्तियों को नहीं देख सकते, किन्तु उच्च स्तर में निवास करने वाले निम्न तल के व्यक्तियों को देख सकते हैं।''

यह सूक्ष्म दृष्टि क्या है? दूर-श्रवण क्या है? गुरुदेव अपने एक चौपन्ने 'साइकिक इन्फ्लूऐंस' में लिखते हैं, ''जैसे आपके स्थूल शरीर में स्थूल इन्द्रियाँ हैं, ठीक उसी प्रकार इन इन्द्रियों के सूक्ष्म प्रतिरूप व्यक्ति के आन्तरिक सूक्ष्म शरीर के भी होते हैं। योगी अथवा गुह्यविद्या के ज्ञाता ध्यान के अभ्यास द्वारा इन आन्तरिक सूक्ष्म अंगों को विकसित कर लेते हैं। इस प्रकार उनकी दूर-दर्शन एवं दूर-श्रवण की शक्तियाँ विकसित हो जाती हैं।'' शारीरिक दूरी इस सूक्ष्म दृष्टि में बाधक नहीं होती। स्वामी जी कहते हैं, ''जैसे प्रकाश की किरणें काँच में से आर-पार निकल जाती हैं, जैसे एक्स-रे की मशीन द्वारा एक्स-किरणों से स्थूल एवं अपारदर्शी वस्तु में से दूसरी ओर की वस्तु को देखा जा सकता है, उसी प्रकार योगी अपनी यौगिक शक्ति के माध्यम से सूक्ष्म दृष्टि द्वारा स्थूल दीवार के दूसरी ओर की वस्तु को सहजता से देख सकता है, बन्द लिफाफे के भीतर की विषय-वस्तु को देख सकता है और धरती के नीचे दबे हुए धन-कोष को देख सकता है। यही अन्तर्दृष्टि, दिव्य दृष्टि अथवा ज्ञान-चक्षु है।''

योगी अपनी अन्तर्दृष्टि का उपयोग किस प्रकार करता है? उसकी कार्य-पद्धति क्या है? इस विषय में पुनः गुरुदेव का कथन है, ''अपनी तीक्ष्ण इच्छा शक्ति से, गहन विचार से वह एक यौगिक-नलिका की रचना करता है और इस यौगिक-नलिका में से वह सुदूर तक देख लेता है...एक अन्य साधन भी है। योगी सूक्ष्म यौगिक यात्रा करता है और इस यौगिक यात्रा के समय अनजाने में ही बहुत-कुछ देख लेता है।''

अन्तर्दृष्टि केवल स्थान की दूरी को ही नहीं लाँघती, अपितु वह समय की सीमा को भी लाँघ सकती है। अतीत और भविष्य इस प्रकार आँखों के समक्ष उपस्थित हो जाते हैं जैसे वर्तमान हो। गुरुदेव कहते हैं, ''दूर यात्रा में केवल सुदूर की वस्तुओं को ही नहीं अपितु अतीत की घटनाओं को भी आकाशीय अभिलेखनों अथवा त्रिकाल ज्ञान के माध्यम से देखा जा सकता है।''

(क्रमशः)

(अनुवादिका : स्वामी शिवाश्रितानन्द माता जी)

शिवानन्द ज्ञानकोष :

आरोग्य

परम पावन श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज

(पूर्व-अंक से आगे)

शारीरिक तथा मानसिक कष्टों से मुक्त होने के लिए सर्वोत्तम उपाय है अपने मन में इसी मन्त्र का जप करना कि मैं अन्नमय कोष से पृथक् आत्मा हूँ जो रोग की परिधि से परे है। इसी सूत्र को मन-ही-मन बार-बार दोहराते रहिए। इसके अर्थ पर भी विशेष ध्यान दीजिए। इस सूत्र के अभ्यास द्वारा ऐसे रोग भी ठीक हो गये, जिनको अच्छे-अच्छे योग्य डॉक्टरों ने असाध्य घोषित कर रखा था। यह एक अचूक दैवी उपाय है। हाँ, इसके परिणाम के लिए धीरज से काम लेना पड़ता है। सुभावात्मक उपाय वेदान्त की ही उपज है। यह वेदान्त का सूत्र है कि 'प्रभ-कृपा से मैं दिन-प्रतिदिन हर प्रकार से स्वास्थ्य-लाभ कर रहा हूँ।'

लोग कहते हैं—एक सेब का दैनिक सेवन डॉक्टरों से दूर रखता है। पर यह महँगा उपाय है और विश्वस्त भी नहीं, परिणाम सन्देहास्पद है। मन्त्रों-वेदान्तिक सूत्र को दैनिक जीवन का अंग बनाइए और इसी भाव का सतत अभ्यास कीजिए, फिर देखिए इसका परिणाम। डॉक्टर को कभी नहीं बुलाना पड़ेगा। यह तो बहुत सस्ता इलाज है, और है भी संजीवनी सरीखा गुणकारी और लाभकारी। ऐसी प्रभावकारी औषधि सर्वसुलभ है। इसके सेवन से डॉक्टर की फीस भी नहीं चुकानी पड़ेगी, अपितु आत्म-साक्षात्कार की प्राप्ति होगी यदि नित्य-प्रति हर घड़ी हर पल आप ध्यान अपनी आत्मा पर केन्द्रित करेंगे। मेरे इस सुझाव पर सन्देह कदापि न करें, बल्कि निष्ठा रखें, विश्वास रखें। इसी सूत्र में निष्ठा रखें। आप नश्वर नहीं अमर आत्मा हैं। वही आपका वास्तविक स्वरूप है। व्यापक आत्मा हैं। आप 'तत्त्वमसि' अपने 'सत्-चित्-आनन्द' स्वरूप को पहचानिए और इसी जन्म में जीवन्मुक्त बनने का सौभाग्य प्राप्त करिए।

हिन्दू धर्म

विश्व के प्रचलित धर्मों में हिन्दू धर्म प्राचीनतम धर्म है। हिन्दू धर्म का रचयिता कोई मनुष्य नहीं है, न ही यह किसी विशेष वर्ग के धर्मोपदेशकों के सिद्धान्तों पर आधारित है। यह इस्लाम तथा ईसाई मतों की भाँति स्थापित नहीं हुआ था। यह तो वेद-द्रष्टा ऋषियों द्वारा प्रकट हुआ है। वेदों, अवतारों, ऋषियों, उपनिषदों, गीता तथा इतिहास की शिक्षाओं के अनुसार युग-युग में पुष्ट होता रहा है। यह सृष्टि के अन्त तक चलता भी रहेगा। प्रत्येक हिन्दू के हृदय में एक विशेष रहस्यमयी आध्यात्मिक शक्ति व्याप्त हो चुकी है।

हिन्दू धर्म को सनानत धर्म तथा वैदिक धर्म के नामों से भी जाना जाता है। सनातन धर्म का अर्थ शाश्वत रहने वाला प्राचीन धर्म है। वेदों के धर्म को ही वैदिक धर्म की संज्ञा दी जाती है।

हिन्दू धर्म सृष्टि के आदिकाल से ही है। हिन्दू धर्म ही सभी धर्मों का जन्मदाता है। भगवान् बुद्ध हिन्दू ही तो थे। उनका जन्म हिन्दू परिवार में हुआ और पोषण भी हिन्दू धर्म के अनुसार ही हुआ। उन्होंने भिन्न-भिन्न

सिद्धान्तों में थोड़ा-बहुत परिवर्तन कर, एक ऐसा धर्म चलाया, जो उनके समय की माँग के अनुसार था। बौद्ध धर्म हिन्दू धर्म की एक शाखा ही तो है। ईसामसीह ने फिलस्तीन के मछली पकड़ने वालों के लिए वाराणसी तथा कश्मीर में तपस्या के फलस्वरूप हिन्दू धर्म के सिद्धान्तों के आधार पर नवीन धर्म प्रस्तुत कर दिया। पारसी धर्म, ईसाई धर्म तथा अन्य धर्म वास्तव में हिन्दू धर्म की ही शाखाएँ हैं।

मुक्तिदायक धर्म

मानव के विवेकी मन को हिन्दू धर्म पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान करता है। हिन्दू धर्म मनुष्य के विचार-स्वातन्त्र्य, भावना तथा संकल्प पर कोई अनुचित अंकुश नहीं लगाता।

हिन्दू धर्म मुक्तिप्रदायक धर्म है। श्रद्धा तथा उपासना के क्षेत्र में भारी छूट देता है। ब्रह्म, जीव, जगत् के स्वरूप, पूजा-पद्धति तथा जीवन-लक्ष्य आदि विषयों के सम्बन्ध में मानवी भावना तथा बुद्धि को पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान करता है। यह धर्म किसी भी मनुष्य को विशेष पूजा-पद्धति के लिए बाध्य नहीं करता। यह धर्म प्रत्येक मनुष्य को चिन्तन, अन्वेषण, अनुसन्धान तथा ध्यान करने का पूर्ण अधिकार देता है। अत: विभिन्न मत, अनेक प्रकार के साधन तथा पूजा-पद्धतियाँ, भिन्न-भिन्न प्रकार के रीति-रिवाज हिन्दू धर्म में एक-साथ समादृत हैं, और इन सबका समन्वयात्मक उत्कर्ष होता है।

अन्य मतों की भाँति हिन्दू धर्म कभी यह नहीं मानता कि केवल इसके द्वारा ही मोक्ष-प्राप्ति हो सकती है, अन्यथा नहीं। यह भी एक अन्तिम परम-लक्ष्य-प्राप्ति का साधन प्रदान करता है और अन्य सभी धर्मों की भी, जो इस लक्ष्यपूर्ति को प्रदान करते हैं, पुष्टि करता है।

सर्वमान्य तथ्य है कि हिन्दू धर्म के द्वार सभी धर्मों के लिए सदैव खुले रहते हैं। हिन्दू धर्म अत्यन्त उदार तथा निष्पक्ष है। यह हिन्दू धर्म का मौलिक आधार है ही। हिन्दू धर्म सभी अन्य धर्मों का आदर करता है। यह किसी अन्य धर्म की निन्दा नहीं करता। यह सत्य का सत्कार करता है, तथा सत्य को स्वीकारता है, भले ही उसका स्रोत तथा रूप कैसा हो।

हिन्दू-शास्त्र

हिन्दू धर्म के दो आध्यात्मिक स्रोत हैं : 'श्रुति' तथा 'स्मृति'। 'श्रुति' का अर्थ है—श्रवण किया जाये और 'स्मृति' का—जिसे स्मरण रखा जाये। 'श्रुति' दैवी प्रकाशन तथा 'स्मृति' परम्परा पर आधारित होती है। अनुभूति-प्रकाशन 'श्रुति' है। उपनिषद् 'श्रुति' है। जो स्मरण रहे, वह 'स्मृति' है जैसे भगवद्गीता। प्रत्यक्षानुभूति ही 'श्रुति' है। महर्षियों ने धर्म के शाश्वत तथ्यों का अनुभव किया और उनको ही आने वाली पीढ़ियों के हितार्थ संजोये रखा। ये संकलन वेद कहलाये। अत: 'श्रुति' मौलिक प्रमाण है। इन अनुभवों का स्मरण ही 'स्मृति' है। अत: यह गौण है। इन स्मृतियों का आधार 'श्रुति' है। इनके रचयिता ज्ञानी ही हैं। किन्तु इन्हें प्रामाणिक ग्रन्थों-तुल्य मान्यता नहीं दी जाती। यदि 'स्मृति' 'श्रुति' पर आधारित न हो तो उसे नकार दिया जाता है। भगवद्गीता स्मृति है, इस प्रकार महाभारत भी।

(क्रमश:)

(अनुवादक : श्री स्वामी अर्पणानन्द जी महाराज)

बाल जगत्

विद्यार्थी जीवन में सफलता

निःस्वार्थ सेवा

प्रिय अमृत पुत्रो!

जब आप सड़क या बाजार में चलो तो थोड़े से खुले पैसे जेब में रखो और उन्हें गरीबों में बाँट दो। रेलवे के प्लेटफार्म पर कुलियों से झगड़ा मत करो। उदार बनो।

आपमें से प्रत्येक को रोग और उसकी चिकित्सा, प्रारम्भिक सहायता आदि का थोड़ा-थोड़ा ज्ञान होना चाहिए। यह ज्ञान आपको बहुत सहायक होगा। यदि आपको यह ज्ञान हो जायेगा तो आप स्वयं अपनी और कुछ अंशों में दुःखी मानवता की सहायता कर सकेंगे। आकस्मिक संकट के समय डाक्टर की सहायता लेने से पूर्व यह आपका सहायक होगा।

स्वामी शिवानन्द

सद्गुणों का अर्जन

दृढ़ निश्चय (Determination)

दृढ़ निश्चय संकल्पशीलता है, यह उद्देश्य की स्थिरता है, चरित्र का निर्णय है।

दृढ़ निश्चय एक सुनिश्चित उद्देश्य की प्राप्ति हेतु कार्ययोजना निश्चित करने की आदत है। यह लक्ष्यों एवं उद्देश्यों के प्रति दृढ़ निष्ठा है।

यदि आपमें केवल दृढ़ निश्चय का गुण है, तो आप समस्त कार्यों में, यहाँ तक कि आत्म-साक्षात्कार में भी सफलता प्राप्त कर सकते हैं।

सन्देह, विचलन, चंचलता, हिचक, अनिर्णय, अस्थिरता, अनिश्चय, दुविधा आदि दृढ़ निश्चय के विपरीतार्थी शब्द हैं।

दृढ़, शुद्ध एवं अदम्य संकल्पशक्ति से सम्पन्न मनुष्य ही दृढ़ निश्चयी होता है।

अपने संकल्प को सशक्त करिए एवं दृढ़ निश्चय के गुण का विकास करिए ।

स्वामी शिवानन्द

दुर्गुणों का नाश

विषाद (Depression)

विषाद उत्साह का अभाव है। यह उदासी अथवा खिन्नता है। यह जीवनी-शक्ति का क्षीण होना है। यह दु:ख की अवस्था है। यह साहस एवं क्रियाशीलता का अभाव है।

विषाद से निराशावादिता उत्पन्न होती है। यह समस्त प्रयासों को निष्प्रभावी कर देता है; उपक्रम क्षमता का नाश करता है। यह मन एवं शरीर के अनेक रोगों को जन्म देता है।

आशा, साहस एवं कार्यशीलता विषाद तथा भय पर विजय प्राप्त करते हैं तथा आपकी पर्वत

समान कठिनाइयों को राई समान नगण्य बना देते हैं। स्थितियाँ कभी उतनी बुरी नहीं होती हैं जितनी आपने कल्पना की थी।

'ॐ' का उच्चारण करिए। प्राणायाम करिए। प्रार्थना करिए। जप करिए। कीर्तन करिए। आनन्दमय आत्मा पर ध्यान कीजिए। प्रसन्नता–प्रफुल्लता का विकास करिए। विषाद तिरोहित हो जायेगा। आप नवीन शक्ति, आनन्द एवं प्रसन्नता से भर जायेंगे।

विषाद एक नकारात्मक स्थिति है। यह अधिक समय तक नहीं रह सकती है। प्रसन्न होइए। सकारात्मक की नकारात्मक पर सदैव विजय होती है।

आपका वास्तविक स्वरूप सच्चिदानन्द है। इसका अनुभव करिए तथा आनन्दपूर्वक संचरण करिए।

स्वामी शिवानन्द

धनुरासन

विधि : भूमि पर पेट के बल लेट जायें। मुख नीचे की ओर रहे। हाथों को अपने पार्श्व में रखें। श्वास छोड़ें तथा पैरों को जंघाओं की ओर खींचते हुए घुटनों पर पैरों को झुकायें। बाहुओं को पीछे की ओर तानें और दक्षिण गुल्फ (ankle) को दक्षिण हस्त से तथा वाम गुल्फ (ankle) को वाम हस्त से पकड़ लें। सामान्य श्वसन लेते हुए हाथों की स्थिति सुदृढ़ करें। हाथों तथा पाँवों को कस कर, खींच कर शिर, शरीर तथा घुटनों को इस प्रकार उठायें कि शरीर

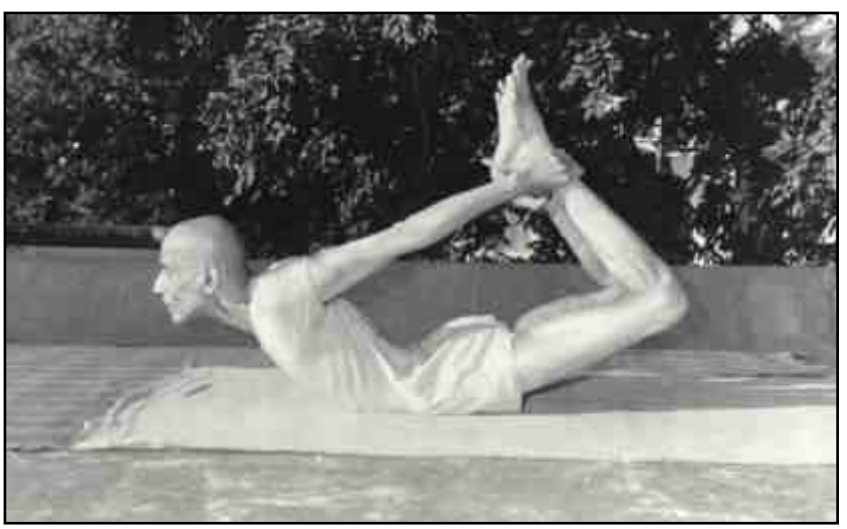

का सम्पूर्ण भार उदर के ऊपर टिका रहे। कुछ क्षणों तक इस आसन में बने रहें। कालावधि में शनैः-शनैः वृद्धि करें। आसन में रहते समय उदर, जंघाओं तथा पृष्ठ-प्रदेश की मांसपेशियों पर सामान्य श्वास लेते हुए ध्यान केन्द्रित करें। गुल्फों को छोड़ दें, पैरों को फैलायें तथा पैरों, वक्षःस्थल तथा शिर को विश्राम देने हेतु एक सीधी रेखा में भूमि पर लायें। कुछ क्षणों तक मकरासन में विश्राम करें। इस आसन को दो अथवा तीन बार दोहरायें।

लाभ : यह आसन कोष्ठबद्धता को दूर करता तथा यकृत, अग्न्याशय और वृक्क को स्वस्थ बनाता है। कटि तथा त्रिक अस्थियों की कशेरुकाएँ भी स्वस्थ बनती हैं। यथोचित रुधिर-परिसंचरण सम्पन्न होता है जिससे व्यक्ति को सुस्वास्थ्य प्राप्त होता है। यह मेरुदण्ड को सुनम्य तथा ढीला भी बनाता है तथा मेरुदण्ड की साधारण पीड़ाएँ नियन्त्रित हो जाती हैं।

स्वामी चिदानन्द

सुखपूर्वक प्राणायाम

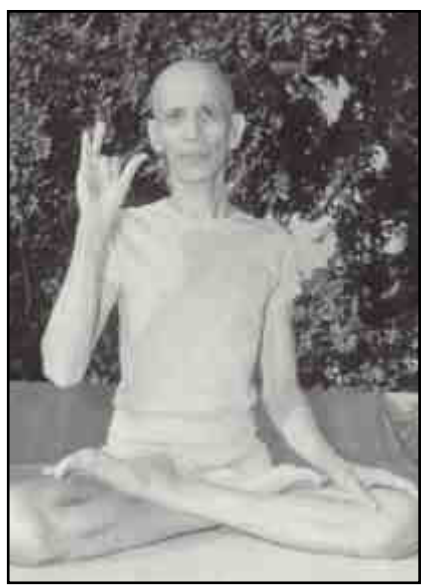

विधि : किसी सुखदायक आसन में बैठें। मेरुदण्ड, ग्रीवा और शिर सीधा रखें। मध्यमा एवं तर्जनी उँगलियाँ मुड़ी हुई तथा अन्य तीनों उँगलियाँ खुली रखें। दाहिने अँगूठे से दाहिना नासापुट बन्द करें। बिना कोई ध्वनि किये बायें नासापुट से बहुत ही धीरे-धीरे पूरक (श्वास लेना) करें। अब दाहिने हाथ की कनिष्ठिका एवं अनामिका उँगलियों से बायाँ नासारन्ध्र बन्द करें और दाहिने अँगूठे को ढीला कर दाहिने नासापुट से अति-धीमी गति से रेचक (श्वास छोड़ना) करें। अब अर्ध-प्रक्रिया पूरी हुई। दाहिने नासापुट से धीरे-धीरे और सुव्यवस्थित रूप से वायु भीतर लें और बायें नासापुट से धीरे-धीरे श्वास निकालें। यह एक आवर्तन पूरा हुआ।

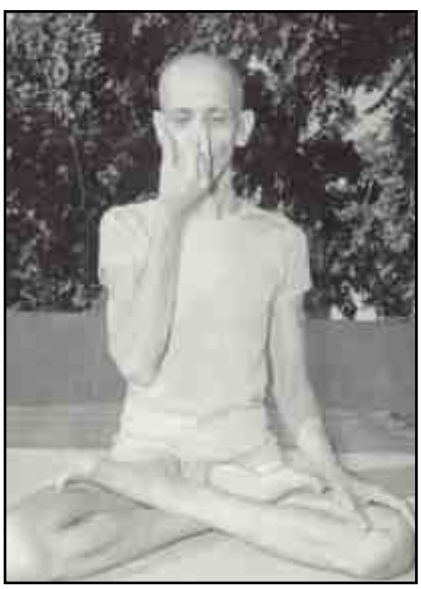

पूरक और रेचक का अनुपात १:२ होना चाहिए। प्रथम १५ दिनों में ५ सेकण्ड तक श्वास लें और १० सेकण्ड तक श्वास निकालें। अगले (द्वितीय) पक्ष में १० सेकण्ड श्वास लेने की और २० सेकण्ड श्वास छोड़ने की समयावधि रखें । पूरक और रेचक करते समय फुफ्फुसों का क्रमशः प्रसारण और संकोचन करें।

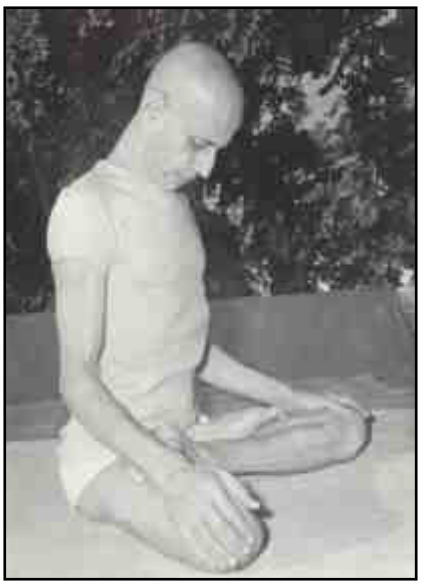

तीन मास के नियमित और सतत अभ्यास के पश्चात् आप श्वासरोक (कुम्भक) भी प्रारम्भ कर सकते हैं। श्वास लेने, रोकने और छोड़ने के समय का अनुपात १:२:२ होना चाहिए अर्थात् यदि आप ५ सेकण्ड तक श्वास लें, पूरक करें तो कुम्भक और रेचक प्रत्येक १० सेकण्ड तक का होना चाहिए। जैसे-जैसे आप अभ्यास में प्रगति करें, आप १:४:२ का अनुपात कर सकते हैं। कुम्भक के समय आप जालन्धर-बन्ध कर सकते हैं। इसकी विधि निम्नांकित है :

श्वास भीतर लेने के पश्चात् जब श्वास रोके हुए हों, ग्रीवा धीरे से झुकायें और जत्रुक (हँसली) पर ठुड्डी को टिका दें। यह बन्ध वायु के शिर की ओर ऊपर जाने के दबाव को रोकता है।

रेचक से पूर्व शिर धीरे-धीरे उठायें, उसे सीधा करके रखें, तब रेचक करें। यह जालन्धर-बन्ध का मोचन है।

चेतावनी : यदि आप शिरदर्द, शिर का भारीपन, चक्कर आना, बेचैनी आदि का अनुभव करते हैं तो इसका आशय है कि आप अधिक परिश्रम कर रहें हैं एवं फुफ्फुसों पर अधिक दबाव डाल रहे हैं। अतएव आपको कुम्भक की समयावधि घटा देनी चाहिए। प्राणायाम के सही अभ्यास का प्रथम लक्षण है—ताजगी, शक्ति एवं शरीर तथा मन का हलकापन अनुभव होना। यदि आप इसका नकारात्मक परिणाम अनुभव करें तो कुम्भक के अभ्यास को तुरन्त बन्द कर दें और किसी कुशल व्यक्ति से परामर्श लें।

लाभ : यह प्राणायाम समस्त व्याधियों का हरण करता, नाड़ियों को शुद्ध करता, ध्यान के लिए मन को स्थिर करता, जठराग्नि और क्षुधा को उद्दीप्त करता तथा ब्रह्मचर्य-पालन में सहायक होता है।

स्वामी चिदानन्द

मुख्यालय आश्रम में श्री रामनवमी उत्सव

सान्द्रानन्दपयोदसौभगतनुं पीताम्बरं सुन्दरं, पाणौ बाणशरासनं कटिलसत्तूणीरभारं वरम् ।
राजीवायतलोचनं धृतजटाजूटेन संशोभितं, सीतालक्ष्मणसंयुतं पथिगतं रामाभिरामं भजे ।।

जिनका शरीर जलयुक्त मेघों के समान श्याम वर्ण का एवं सुन्दर है, जो पीतवस्त्र धारण किये हैं, जिनके हाथों में धनुष और बाण हैं, जिनकी कटि उत्तम तरकश से सुशोभित है, जिनके कमल के समान विशाल नेत्र हैं, जिन्होंने मस्तक पर जटाएँ धारण की हैं, श्री सीता जी एवं श्री लक्ष्मण जी सहित मार्ग में चलते हुए उन आनन्दघन भगवान् श्री रामचन्द्र की मैं भक्तिपूर्वक आराधना करता हूँ।

भगवान् श्री राम के धरा पर अवतरण का पावन दिवस मुख्यालय आश्रम में २१ अप्रैल २०२१ को भक्तिभावपूर्वक मनाया गया। उत्सव के मंगलाचरण के रूप में, २९ मार्च से १६ अप्रैल तक श्री दिव्यनाम मन्दिर में आश्रम के संन्यासी एवं ब्रह्मचारी वृन्द द्वारा श्री वाल्मीकि रामायण का मूल पारायण किया गया। इसके पश्चात्, १७ से २० अप्रैल तक श्री विश्वनाथ मन्दिर के पवित्र प्रांगण में प्रतिदिन दो घण्टे दिव्य मन्त्र 'श्री राम जय राम जय जय राम' का सामूहिक गान किया गया।

२१ अप्रैल २०२१ को पावन समाधि मन्दिर में प्रार्थना एवं ध्यान के साथ, श्री रामनवमी का शुभ दिवस प्रारम्भ हुआ। तदुपरान्त, पूर्वाह्न ९.०० से मध्याह्न १२ बजे तक श्री विश्वनाथ मन्दिर में वैदिक मन्त्रों के वाचन एवं भावपूर्ण भजन-कीर्तन के साथ भगवान् श्री रामचन्द्र की भव्य पूजा सम्पन्न हुई। पूजा के पश्चात्, परम पूज्य श्री स्वामी पद्मनाभानन्द जी महाराज ने श्री वाल्मीकि रामायण से तथा श्री स्वामी हरिहरानन्द जी महाराज ने श्री रामचरितमानस से भगवान् के अवतरण का वर्णन करने वाले अंश का पाठ किया। उत्सव का समापन आरती एवं अन्नपूर्णा हॉल में प्रसाद वितरण के साथ हुआ।

रात्रि सत्संग में सद्गुरुदेव श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज की दो पुस्तकों तथा परम पूज्य श्री स्वामी कृष्णानन्द जी महाराज की जन्म-शताब्दी शृंखला की एक पुस्तिका का विमोचन किया गया। आरती एवं प्रसाद वितरण के साथ सत्संग समाप्त हुआ।

भगवान् श्री राम एवं सद्गुरुदेव की दिव्य कृपा सब पर हो।

परम पूज्य श्री स्वामी कृष्णानन्द जी महाराज का ९९ वाँ जन्म जयन्ती समारोह

मुख्यालय आश्रम में २५ अप्रैल २०२१ को परम पूज्य श्री स्वामी कृष्णानन्द जी महाराज का ९९ वाँ जन्म दिवस अत्यन्त भावपूर्वक एवं आध्यात्मिक उल्लासपूर्वक मनाया गया।

इस शुभ दिवस के उपलक्ष में, श्री समाधि मन्दिर में सद्गुरुदेव श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज की पावन पादुकाओं की विशेष पूजा-अर्चना सम्पन्न हुई जिसमें आश्रम के वरिष्ठ स्वामीजिओं, संन्यासी एवं ब्रह्मचारी वृन्द ने अत्यधिक हर्षपूर्वक भाग लिया। पादुका-पूजा के पश्चात् आयोजित सत्संग में भावपूर्ण भजन-कीर्तन के माध्यम से पूज्य श्री स्वामी जी महाराज के प्रति प्रेमाजंलि अर्पित की गयी। तदुपरान्त, परम पूज्य श्री स्वामी योगस्वरूपानन्द जी महाराज ने अपने संक्षिप्त सन्देश में उपस्थित अन्तेवासियों को श्रद्धेय श्री स्वामी कृष्णानन्द जी महाराज के उज्ज्वल आदर्श का अनुकरण करने तथा उनके उपदेशों का पालन करने की प्रेरणा दी।

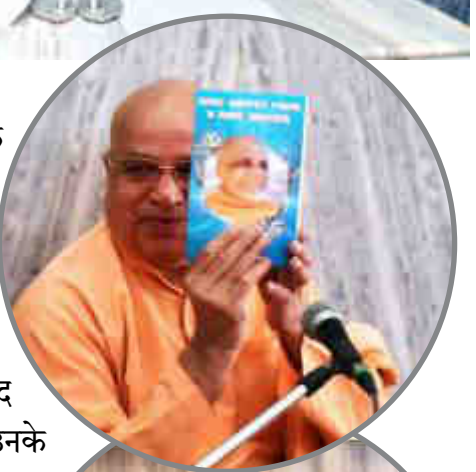

इस पावन दिवस पर पूज्य श्री स्वामी जी महाराज के सुन्दर फोटोज़ एवं प्रेरणाप्रद वचनों से युक्त 'टाइमलेस कैलेन्डर', उनकी तीन पुस्तकों, तीन पुस्तिकाओं तथा एक बुकमार्क का विमोचन भी किया गया। आरती, प्रसाद एवं ज्ञानप्रसाद के वितरण के साथ सत्संग का समापन हुआ।

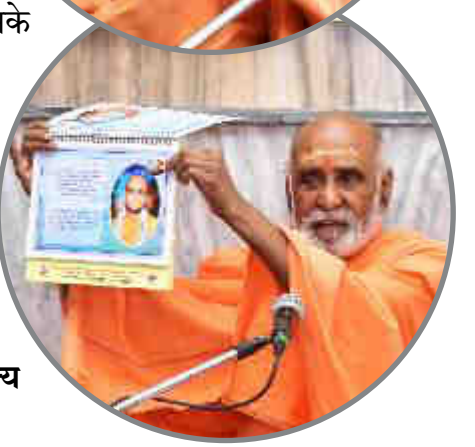

सद्गुरुदेव श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज एवं परम पूज्य श्री स्वामी कृष्णानन्द जी महाराज के विपुल आशीर्वाद सब पर हों।

डोनेशन सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण सूचना

प्रशासनिक कारणों तथा वर्तमान अकाउण्टिंग व्यवस्था (Accounting System) को थोड़ा सरल बनाने के उद्देश्य से, १० मार्च २०२१ को आयोजित 'बोर्ड ऑफ मैनेजमेण्ट' मीटिंग एवं ११ मार्च २०२१ को आयोजित 'बोर्ड ऑफ ट्रस्टीज' मीटिंग में यह निर्णय लिया गया है कि द डिवाइन लाइफ सोसायटी के लिए भेजे जाने वाले डोनेशन दिनांक १ अप्रैल २०२१ से केवल निम्नलिखित अकाउण्टस हेड्स हेतु ही स्वीकार किये जायेंगे—

जनरल डोनेशन

(१) आश्रम जनरल डोनेशन

(२) अन्नक्षेत्र

(३) मेडिकल रिलीफ

कॉरपस डोनेशन

शिवानन्द आश्रम कॉरपस (मूलधन) फण्ड

अत: भक्तवृन्द से अनुरोध है कि वे केवल उपर्युक्त अकाउण्टस हेड्स हेतु ही डोनेशन भेजें।

आश्रम के भक्त एवं हितैषी जनों को यह भी सूचित किया जाता है कि

- 'आश्रम जनरल डोनेशन' में प्राप्त धनराशि का उपयोग द डिवाइन लाइफ सोसायटी की समस्त धार्मिक, आध्यात्मिक एवं सेवा-सम्बन्धी गतिविधियों हेतु किया जायेगा यथा शिवानन्द होम द्वारा गृहविहीन-निराश्रितों की देखभाल, लेप्रसी रिलीफ वर्क द्वारा कुष्ठरोगियों की सेवा, निर्धन छात्रों को शैक्षिक सहायता, योग-वेदान्त फॉरेस्ट अकादमी का संचालन, नि:शुल्क वितरणार्थ आध्यात्मिक पुस्तकों का मुद्रण, आध्यात्मिक ज्ञान का प्रचार-प्रसार, आश्रम-मन्दिरों में पूजा-अर्चना, आश्रम एवं गौशाला का रख-रखाव तथा आश्रम की नियमित धार्मिक-आध्यात्मिक गतिविधियों का संचालन। इस धनराशि का उपयोग सोसायटी द्वारा समय-समय पर आयोजित अन्य विभिन्न धार्मिक, आध्यात्मिक एवं सेवा-सम्बन्धी कार्यक्रमों हेतु भी किया जायेगा।
- 'मेडिकल रिलीफ' के अन्तर्गत प्राप्त डोनेशन का उपयोग शिवानन्द चैरिटेबल हॉस्पिटल में जरूरतमन्द रोगियों के उपचार हेतु तथा सोसायटी द्वारा संचालित अन्य चिकित्सा-सम्बन्धी कार्यक्रमों हेतु किया जायेगा।
- इसी प्रकार 'शिवानन्द आश्रम कॉरपस (मूलधन) फण्ड' से प्राप्त ब्याज की राशि का सदुपयोग सोसायटी की समस्त गतिविधियों (धार्मिक, आध्यात्मिक एवं सेवा-सम्बन्धी) हेतु किया जायेगा।
- इस सम्बन्ध में यह तथ्य ध्यान देने योग्य है कि सोसायटी अपनी किसी गतिविधि को समाप्त नहीं कर रही है। सोसायटी की सभी आश्रम-सम्बन्धी एवं सेवा-सम्बन्धी गतिविधियाँ पूर्ववत् चलती रहेंगी; यद्यपि डोनेशन स्वीकार करने हेतु अकाउण्टस हेड्स की संख्या कम कर दी गयी है।
- द डिवाइन लाइफ सोसायटी के लिए डोनेशन 'ऑनलाइन डोनेशन सुविधा' द्वारा वेब एड्रेस

https:donations.sivanandaonline.org के माध्यम से अथवा हमारी वेबसाइट www.sivanandaonline.org में दिये गये 'ऑनलाइन डोनेशन' लिंक के माध्यम से भेजा जा सकता है।

- डोनेशन ऋषिकेश में देय बैंकड्राफ्ट अथवा चेक अथवा इलेक्ट्रानिक मनीआर्डर (E.M.O.) द्वारा "The Divine Life Society", Shivanandanagar, Uttarakhand के नाम भी भेजा जा सकता है। कृपया ड्राफ्ट अथवा चेक अथवा ई. एम. ओ. के साथ एक पत्र में डोनेशन का उद्देश्य, अपना डाक पता, फोन नम्बर, ई मेल आई डी तथा पैन नम्बर लिख कर भेजें।
- भक्तवृन्द को यह भी सूचित किया जाता है कि आश्रम-मन्दिरों में पूजा-अर्चना करवाने हेतु कोई धनराशि नहीं ली जायेगी। जो व्यक्ति अपने अथवा अपने परिवार के किसी सदस्य के नाम पर पूजा करवाना चाहते हैं, वे इस सम्बन्ध में आश्रम के महासचिव अथवा परमाध्यक्ष को आवश्यक विवरण के साथ एक अनुरोध-पत्र ई मेल अथवा डाक द्वारा भेज सकते हैं जिससे कि उनके नाम पर पूजा सम्पन्न हो सके।
- सोसायटी को भेजे जाने वाले सदस्यता शुल्क, प्रवेश शुल्क, आजीवन सदस्यता शुल्क, पैट्रनशिप शुल्क, शाखा-सम्बद्धता शुल्क एवं एस पी एल को भेजी जाने वाली अग्रिम धनराशि से सम्बन्धित प्रावधानों एवं निर्देशों में कोई परिवर्तन नहीं किया गया है।

द डिवाइन लाइफ सोसायटी मुख्यालय के सदस्यता-शुल्क एवं शाखाओं के सम्बद्धता-शुल्क की दरें

१.	नवीन सदस्यता-शुल्क*		₹ १५०/-
	प्रवेश-शुल्क	₹ ५०/-	
	सदस्यता-शुल्क	₹ १००/-	
२.	सदस्यता नवीकरण-शुल्क (वार्षिक)		₹ १००/-
३.	नयी शाखा खोलने का शुल्क**		₹ १०००/-
	प्रवेश-शुल्क	₹ ५००/-	
	सम्बद्धता-शुल्क	₹ ५००/-	
४.	शाखा-सम्बद्धता नवीकरण शुल्क (वार्षिक)		₹ ५००/-

* सदस्यता के इच्छुक प्रार्थी कृपया प्रार्थना-पत्र के साथ अपना फोटो पहचान-पत्र (Photo Identity) तथा निवास-स्थान के प्रमाण-स्वरूप कोई दस्तावेज (Residential Proof) भेजें।

**नयी शाखा खोलने के लिए मुख्यालय से लिखित अनुमति लेनी होगी।

⇨ कृपया सदस्यता-शुल्क और शाखा-सम्बद्धता-शुल्क ऋषिकेश में स्थित किसी भी बैंक के नाम बने डिमांड ड्राफ्ट अथवा चेक द्वारा भेजें।

शिवानन्द होम द्वारा सेवा

''शिवानन्द होम उन एकाकी एवं मरणासन्न लोगों की प्रेमपूर्ण देख-रेख का एक केन्द्र है, जो सड़क के किनारे पड़े मिलते हैं, जिनकी देख-रेख करने वाला कोई नहीं है, जिन लोगों के रहने के लिए कोई घर नहीं है, जिनका न तो स्थायी और न ही अस्थायी रूप से कोई ठिकाना है, जो रोगग्रस्त हो जाते हैं, गुम हो जाते हैं अथवा अपने परिवार द्वारा त्याग दिये जाते हैं।''

परम पावन श्री स्वामी चिदानन्द जी महाराज

शिवानन्द होम से कुछ दूरी पर ही एक साधु अचानक गिर गये। आस-पास के व्यक्ति यह पूछने होम में आये कि क्या इन बाबा को होम मे भर्ती किया जा सकता है। यह शाम का समय था। उन व्यक्तियों से पता चलने के तुरन्त बाद, उन रोगी साधु को चार अन्य लोगों की सहायता से सड़क से उठाया गया तथा होम के एक कक्ष में पृथक् रखा गया। अगली सुबह उनकी कोविड-१९ जाँच करायी गयी, सौभाग्यवश रिपोर्ट नेगेटिव ही आयी। उन साधु के पूरे शरीर पर सूजन थी, पैर में संक्रमित घाव था, रक्तचाप बहुत अधिक था, मूत्र संक्रमण एवं आँतों में संक्रमण के साथ आँतों में कीड़े भी थे। उनके रोगों के अनुसार उन्हें दवाईयाँ एवं इंजेक्शन दिये गये तथा कुछ दिनों बाद, उनकी दशा में सुधार आने लगा और वे बेहतर अनुभव करने लगे। वे होम के अन्तेवासियों के लिए अपरिचित नहीं थे क्योंकि इससे पहले भी वे कई बार इन्हीं शारीरिक व्याधियों के उपचार हेतु होम में कुछ समय के लिए भर्ती हुए थे।

ऐसा प्राय: होता है कि सड़क पर रहने वाले साधु अथवा परिव्राजक साधु होम में कुछ समय के लिए भर्ती किये जाते हैं; उन्हें किसी शारीरिक रोग, चोट अथवा पेट एवं आँतों की समस्या हेतु उपचार की आवश्यकता होती है। अपने उपचार के बाद वे होम से चले जाते हैं; क्योंकि वे किसी संस्था की चारदीवारी में बन्द होकर नहीं रह सकते हैं; उन्हें अपनी स्वतन्त्रता, अपना एकान्त अधिक प्रिय होते हैं। यद्यपि उपचार हेतु, वे कहीं से भी दवाईयाँ प्राप्त कर सकते हैं, दवाईयाँ प्राप्त करना कोई समस्या नहीं है; परन्तु शारीरिक स्वास्थ्य को पुन: प्राप्त करने के लिए उचित विश्राम, पौष्टिक आहार एवं स्वच्छ जल अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हैं। हम प्राय: इन मूलभूत सुविधाओं का महत्त्व नहीं समझते हैं, क्योंकि हमें ये सुलभता से प्राप्त हैं। परन्तु ये सुविधाएँ सबको प्राप्त नहीं हैं। इसके अतिरिक्त यह भी एक कारण हो सकता है कि किसी भी हॉस्पिटल में रोगी को बिना सहायक अथवा परिजन के भर्ती किया जाना असम्भव है क्योंकि हॉस्पिटल में परिजन ही रोगी के लिए भोजन एवं दवाई लाएगा और उसकी उचित देखभाल करेगा।

श्री गुरुदेव के अनुग्रह से, यह रोगी साधु यहाँ एक कमरे में पंखे की हवा में कुछ समय तक विश्रान्ति प्राप्त कर सकते हैं; इसके पश्चात् इन्हें खुले आकाश के नीचे झुलसाती गर्मी में भगवदीय कृपा में पूर्ण विश्वास के साथ रहना है।

''अपने वास्तविक स्वरूप के प्रति जाग्रति से प्राप्त साहस एवं शक्ति से श्रेष्ठ अन्य कोई साहस एवं शक्ति नहीं हो सकते हैं। ''मैं अमर आत्म-तत्त्व हूँ''—इस सत्य के प्रति जाग्रति से प्राप्त शक्ति आपको जीवन के समस्त उतार-चढ़ाव का, दु:खों एवं कष्टों का आन्तरिक स्थिरता एवं बल के साथ सामना करने योग्य बनायेगी।''

परम पावन श्री स्वामी चिदानन्द जी महाराज

''हम सब नाम-रूपों में तुम्हारा दर्शन करें। तुम्हारी अर्चना के ही रूप में इन नाम-रूपों की सेवा करें। सदा तुम्हारा ही स्मरण करें। सदा तुम्हारी ही महिमा का गान करें। तुम्हारा ही कलिकल्मषहारी नाम हमारे अधर-पुट पर हो। सदा हम तुममें ही निवास करें।''

परम श्रद्धेय श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज

डी एल एस शाखाओं के प्रतिवेदन

भारतीय शाखाएँ

अंगुल (ओडिशा): प्रत्येक रविवार को पादुका पूजा के अतिरिक्त, ११ मार्च को महाशिवरात्रि 'ॐ नमःशिवाय' मन्त्र के जप सहित मनायी गयी ।

भीमकण्ड (ओडिशा): शाखा द्वारा दैनिक पादुका पूजा एवं प्रत्येक रविवार को साप्ताहिक सत्संग नियमित रूप से चलते रहे।

छत्रपुर (ओडिशा): दैनिक पूजा, प्रत्येक गुरुवार को साप्ताहिक सत्संग तथा माह की ८ और २४ को पादुका पूजा यथावत् चलते रहे। ७ फरवरी को साधना दिवस तथा ६, २०, २१ एवं २३ फरवरी को विशेष सत्संग आयोजित किये गये ।

गहम–अंगुल(ओडिशा): शाखा द्वारा १४ फरवरी से २८ मार्च तक चिदानन्द सेन्टीनरी चैरिटेबल डिस्पेन्सरी के माध्यम से ३३६ जरूरतमन्द रोगियों को निःशुल्क औषधियाँ वितरित की गयी ।

जी–नुआगाम(ओडिशा): २३ फरवरी को शाखा द्वारा एक भक्त के आवास पर विशेष सत्संग आयोजित किया गया ।

खातिगुडा (ओडिशा): दैनिक पूजा, प्रत्येक गुरुवार को साप्ताहिक सत्संग तथा एकादशी को श्रीविष्णुसहस्रनाम पाठ पूर्ववत् चलते रहे। १४ फरवरी को शाखा स्थापना दिवस के अवसर पर नगर संकीर्तन, पादुका पूजा, भजन–कीर्तन एवं प्रवचन का आयोजन किया गया । ११ मार्च को महाशिवरात्रि पादुका पूजा, रुद्राभिषेक तथा 'ॐ नमःशिवाय' मन्त्र के जप सहित मनायी गयी ।

लखनऊ (उत्तर प्रदेश): ७ एवं २८ फरवरी को तथा २१ मार्च को लेखराज होम में प्रार्थना, भजन, मन्त्र जप, गीता पाठ और स्वाध्याय सहित विशेष सत्संग आयोजित किये गये ।

नन्दिनीनगर (छत्तीसगढ़): शाखा द्वारा श्रीमद्भगवद्गीता पारायण एवं श्री हनुमान चालीसा पाठ सहित दैनिक प्रातःकालीन सत्संग, श्री विष्णुसहस्रनाम पारायण सहित सायंकालीन सत्संग, प्रत्येक गुरुवार को साप्ताहिक सत्संग तथा प्रत्येक शनिवार को श्री हनुमान चालीसा पाठ एवं श्री सुन्दरकाण्ड पाठ सहित मातृ सत्संग पूर्ववत् चलते रहे। ३ मार्च को महामन्त्र संकीर्तन किया गया और ११ मार्च को महाशिवरात्रि पादुका पूजा, रुद्राभिषेक एवं भजन–कीर्तन सहित मनायी गयी ।

नयागढ़ (ओडिशा): प्रत्येक बुधवार को साप्ताहिक सत्संग के अतिरिक्त, १२ फ़रवरी को पादुका पूजा, श्री सुन्दरकाण्ड पाठ एवं श्री हनुमान चालीसा पाठ सहित सत्संग का आयोजन किया गया । ११ मार्च को महाशिवरात्रि रुद्राभिषेक तथा 'ॐ नमःशिवाय' मन्त्र के जप सहित मनायी गयी । २८ मार्च को अखण्ड महामन्त्र संकीर्तन किया गया ।

पंचकुला (हरियाणा): प्रत्येक रविवार को चल सत्संग के अतिरिक्त, २० फ़रवरी को मुख्यालय आश्रम के श्री स्वामी अखिलानन्द जी तथा श्री स्वामी शिवाश्रितानन्द माता जी के सान्निध्य में विशेष सत्संग आयोजित किया गया जिसका समापन विश्व शान्ति हेतु प्रार्थना एवं महामृत्युञ्जय मन्त्र जप के साथ हुआ।

पुरी (ओडिशा): शाखा द्वारा दैनिक प्रार्थना,

प्रत्येक रविवार को साप्ताहिक सत्संग, माह की ८ एवं २४ को पादुका पूजा, प्रत्येक एकादशी को श्रीविष्णुसहस्रनाम पारायण एवं श्रीमद्भगवद्गीता पाठ तथा संक्रान्ति को श्री हनुमान चालीसा यथावत् चलते रहे। माह की ३, ६, १५ एवं २१ तारीख को प्रवचन आयोजित किये गये ।

राउरकेला (ओडिशा): प्रत्येक गुरुवार एवं रविवार को पादुका पूजा, भजन-कीर्तन एवं श्री विष्णुसहस्रनाम पारायण सहित साप्ताहिक सत्संग पूर्ववत् चलते रहे। ५ मार्च को श्री विश्वनाथ मन्दिर का प्रतिष्ठा दिवस मनाया गया।

साउथ बलांडा (ओडिशा): प्रातः-सायं दैनिक पूजा, प्रत्येक शुक्रवार को सत्संग, माह की ८ एवं २४ को पादुका पूजा, एकादशी को श्रीमद्भगवद्गीता पारायण, श्री विष्णुसहस्रनाम पारायण एवं श्री हनुमान चालीसा पाठ आदि शाखा की नियमित गतिविधियाँ चलती रहीं। ६ फरवरी को चल सत्संग तथा २८ फरवरी को विश्व शान्ति हेतु अखण्ड महामन्त्र संकीर्तन किया गया।

सुनाबेडा (ओडिशा): शाखा द्वारा दैनिक योग कक्षा, प्रत्येक गुरुवार एवं रविवार को पादुका पूजा, भजन-कीर्तन एवं स्वाध्याय सहित साप्ताहिक सत्संग, प्रत्येक बुधवार और शनिवार को मातृ सत्संग, एकादशी को श्री विष्णुसहस्रनाम पारायण तथा संक्रान्ति को अर्चना इत्यादि कार्यक्रम नियमित रूप से चलते रहे । १४ मार्च को सुन्दरकाण्ड पाठ किया गया तथा २८ एवं २९ को अखण्ड नाम जप किया गया ।

बी.एच.ई.एल हरिद्वार (उत्तराखण्ड): सायंकालीन योग कक्षा, प्रत्येक मंगलवार को श्री रामचरितमानस पाठ, एकादशी को श्रीमद्भगवद्गीता पारायण, माह की ८ तारीख को दरिद्रनारायण सेवा कार्यक्रम नियमित रूप से चलते रहे । २५ दिसम्बर को श्रीमद्भगवद्गीता जयन्ती तथा ११ मार्च को महाशिवरात्रि भावपूर्वक मनायी गयी ।

बीकानेर (राजस्थान): शाखा द्वारा मार्च माह में दैनिक पूजा, योग कक्षा, प्रत्येक शनिवार को श्री हनुमान चालीसा एवं श्री सुन्दरकाण्ड पाठ, माह की प्रत्येक २४ तारीख को हवन, सत्संग इत्यादि नियमित गतिविधियों के अतिरिक्त, नेत्रहीन बालिकाओं के लिए संगीत कक्षाएँ संचालित की गयी ।

फरीदपुर (उत्तर प्रदेश): प्रत्येक बुधवार को साप्ताहिक सत्संग के अतिरिक्त, माह की ७ तारीख को स्वामी प्रेमानन्द स्मृति दिवस पर भगवन्नाम संकीर्तन का आयोजन किया गया जिसका समापन शिवानन्द स्मृति दिवस को हुआ । रोगियों की सेवा एवं दरिद्रनारायण सेवा कार्यक्रम यथावत् चलते रहे।

गुमरगुण्डा (छत्तीसगढ़): मार्च माह में दैनिक त्रि-सन्ध्या आरती, सायंकालीन सत्संग, प्रत्येक सोमवार को शिवाभिषेक, गुरुवार को पादुका पूजा, शनिवार रात्रि को सुन्दरकाण्ड पाठ तथा ग्रामीण साप्ताहिक सत्संग कार्यक्रम के अन्तर्गत निकटवर्ती गाँवों में रात्रि सत्संग इत्यादि कार्यक्रम नियमित रूप से चलते रहे । महाशिवरात्रि पर्व के उपलक्ष में २६ फरवरी से १२ मार्च तक 'ॐ नमःशिवाय' मन्त्र का अखण्ड संकीर्तन किया गया ।

राजापार्क शाखा, जयपुर (राजस्थान): शाखा द्वारा फरवरी माह में दैनिक पूजा, पारायण, प्रत्येक रविवार को हवन एवं सत्संग इत्यादि की आध्यात्मिक गतिविधियाँ तथा ज्ञान-प्रसार, स्वास्थ्य, अन्नदान एवं जल सेवा कार्यक्रम सभी पूर्ववत् नियमित रूप से चलते रहे। इसी माह प्रत्येक शनिवार को सुन्दरकाण्ड पाठ का पुनः प्रारम्भ किया गया ।

हिन्दी में उपलब्ध पुस्तकों की नवीनतम सूची

श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज कृत

अच्छी नींद कैसे सोयें	₹ ७०/-
अध्यात्मविद्या	१४०/-
कर्म और रोग	२५/-
कर्मयोग-साधना	१३०/-
गीता-प्रबोधिनी	५५/-
गुरु-तत्त्व	५५/-
घरेलू चिकित्सा	१९०/-
जपयोग	१२०/-
जीवन में सफलता के रहस्य	१८५/-
ज्योति, शक्ति और प्रज्ञा	४०/-
दिव्योपदेश	३५/-
देवी माहात्म्य	११५/-
धनवान् कैसे बनें	५०/-
धारणा और ध्यान	१७०/-
ध्यानयोग	१३०/-
प्राणायाम-साधना	७५/-
बालकों के लिए दिव्य जीवन सन्देश	१००/-
ब्रह्मचर्य-साधना	११०/-
भगवान् शिव और उनकी आराधना	१५०/-
भगवान् श्रीकृष्ण	१३०/-
मन : रहस्य और निग्रह	२०५/-
मरणोत्तर जीवन और पुनर्जन्म	१३५/-
मानसिक शक्ति	१३०/-
मूर्तिपूजा का दर्शन और महत्त्व	३०/-
मैं इसका उत्तर दूँ?	१३०/-
श्रीमद्भगवद्गीता	४२५/-
योगाभ्यास का मूलाधार	१८५/-
योगवासिष्ठ की कथाएँ	९०/-
योगासन	११५/-
विद्यार्थी-जीवन में सफलता	६०/-
शिवानन्द-आत्मकथा	₹ १२०/-
सत्संग भजन माला	१६०/-
सत्संग और स्वाध्याय	६०/-
सद्गुणों का अर्जन एवं दुर्गुणों का नाश किस प्रकार करें	१९५/-
सन्त-चरित्र	२३५/-
सौ वर्ष कैसे जियें	९५/-
साधना	३२०/-
स्वरयोग	८०/-
हठयोग	१००/-
हिन्दूतत्त्व-विवेचन	१६०/-

श्री स्वामी चिदानन्द जी महाराज कृत

अध्यात्म-प्रसून	३५/-
आलोक-पुंज	१०५/-
ज्योति-पथ की ओर	१०५/-
त्याग : शरणागति	२५/-
भगवान् का मातृरूप	७०/-
मोक्ष सम्भव है!	२५/-
योग-सन्दर्शिका	५५/-
शाश्वत सन्देश	५५/-
शोकातीत पथ	१४०/-
साधना सार	३५/-

अन्य लेखक कृत

एकादशोपनिषदः (मूल मन्त्राः)	१४०/-
गुरुदेव कुटीर में भजन-कीर्तन	५०/-
चिदानन्दम्	२००/-
जीवन-स्रोत	१५०/-
शारीरकमीमांसादर्शनम्	१५/-
शिव स्तोत्र माला	३५/-
श्रीमद्भगवद्गीता (मूलमात्रम्)	१००/-
सर्वस्नेही हृदय	१००/-
दिव्य योगा	९०/-

५०% अग्रिम। पैकिंग अतिरिक्त । विस्तृत जानकारी के लिए निम्नांकित पते पर सम्पर्क करें :

द डिवाइन लाइफ सोसायटी, पत्रालय : शिवानन्दनगर—२४९१९२, जिला : टिहरी-गढ़वाल, उत्तराखण्ड, भारत

फोन : ०१३५-२४३४७८०, २४३००४०; E-mail : bookstore@sivanandaonline.org

For online orders and Catalogue : dlsbooks.org

NEW RELEASE!

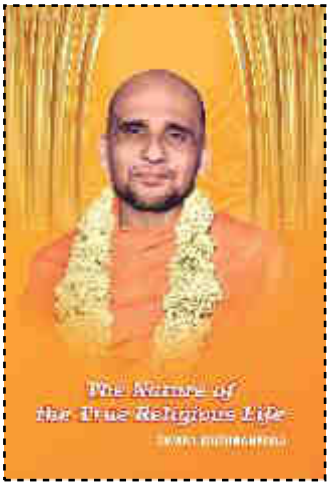

THE NATURE OF THE TRUE RELIGIOUS LIFE

Pages: 248 **Price: ₹ 235/-**

First Edition: 2021

A masterly treatise on some intricate spiritual themes by Worshipful Sri Swami Krishnanandaji Maharaj.

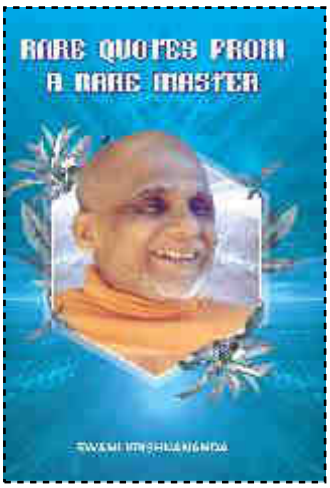

RARE QUOTES FROM A RARE MASTER

Pages: 128 **Price: ₹ 100/-**

First Edition: 2021

A beautiful compilation of inspiring and illuminating handwritten messages of Worshipful Sri Swami Krishnanandaji Maharaj.

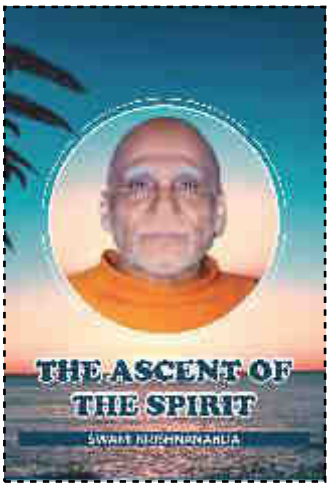

THE ASCENT OF THE SPIRIT

Pages: 256 **Price: ₹ 160/-**

Third Edition: 2021

बीस महत्त्वपूर्ण आध्यात्मिक नियम

(परम श्रद्धेय श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज)

१. **ब्राह्ममुहूर्त-जागरण**—नित्यप्रति प्रातः चार बजे उठिए। यह ब्राह्ममुहूर्त ईश्वर के ध्यान के लिए बहुत अनुकूल है।

२. **आसन**—पद्मासन, सिद्धासन अथवा सुखासन पर जप तथा ध्यान के लिए आधे घण्टे के लिए पूर्व अथवा उत्तर दिशा की ओर मुख करके बैठ जाइए। ध्यान के समय को शनैः-शनैः तीन घण्टे तक बढ़ाइए। ब्रह्मचर्य तथा स्वास्थ्य के लिए शीर्षासन अथवा सर्वांगासन कीजिए। हलके शारीरिक व्यायाम (जैसे टहलना आदि) नियमित रूप से कीजिए। बीस बार प्राणायाम कीजिए।

३. **जप**—अपनी रुचि या प्रकृति के अनुसार किसी भी मन्त्र (जैसे '**ॐ**', '**ॐ नमो नारायणाय**', '**ॐ नमः शिवाय**', '**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**', '**ॐ श्री शरवणभवाय नमः**', '**सीताराम**', '**श्री राम**', '**हरि ॐ**' या गायत्री) का १०८ से २१,६०० बार प्रतिदिन जप कीजिए (मालाओं की संख्या १ और २०० के बीच)।

४. **आहार-संयम**—शुद्ध सात्त्विक आहार लीजिए। मिर्च, इमली, लहसुन, प्याज, खट्टे पदार्थ, तेल, सरसों तथा हींग का त्याग कीजिए। मिताहार कीजिए। आवश्यकता से अधिक खा कर पेट पर बोझ न डालिए। वर्ष में एक या दो बार एक पखवाड़े के लिए उस वस्तु का परित्याग कीजिए जिसे मन सबसे अधिक पसन्द करता है। सादा भोजन कीजिए। दूध तथा फल एकाग्रता में सहायक होते हैं। भोजन को जीवन-निर्वाह के लिए औषधि के समान लीजिए। भोग के लिए भोजन करना पाप है। एक माह के लिए नमक तथा चीनी का परित्याग कीजिए। बिना चटनी तथा अचार के केवल चावल, रोटी तथा दाल पर ही निर्वाह करने की क्षमता आपमें होनी चाहिए। दाल के लिए और अधिक नमक तथा चाय, काफी और दूध के लिए और अधिक चीनी न माँगिए।

५. **ध्यान-कक्ष**—ध्यान-कक्ष अलग होना चाहिए। उसे तालेकुंजी से बन्द रखिए।

६. **दान**—प्रतिमाह अथवा प्रतिदिन यथाशक्ति नियमित रूप से दान दीजिए अथवा एक रुपये में दस पैसे के हिसाब से दान दीजिए।

७. **स्वाध्याय**—गीता, रामायण, भागवत, विष्णुसहस्रनाम, आदित्यहृदय, उपनिषद्, योगवासिष्ठ, बाइबिल, जेन्दअवस्ता, कुरान आदि का आधा घण्टे तक नित्य स्वाध्याय कीजिए तथा शुद्ध विचार रखिए।

८. **ब्रह्मचर्य**—बहुत ही सावधानीपूर्वक वीर्य की रक्षा कीजिए। वीर्य विभूति है। वीर्य ही सम्पूर्ण शक्ति है। वीर्य ही सम्पत्ति है। वीर्य जीवन, विचार तथा बुद्धि का सार है।

९. **स्तोत्र-पाठ**—प्रार्थना के कुछ श्लोकों अथवा स्तोत्रों को याद कर लीजिए। जप अथवा ध्यान आरम्भ करने से पहले उनका पाठ कीजिए। इससे मन शीघ्र ही समुन्नत हो जायेगा।

१०. **सत्संग**—निरन्तर सत्संग कीजिए। कुसंगति, धूम्रपान, मांस, शराब आदि का पूर्णतः त्याग कीजिए। बुरी आदतों में न फँसिए।

११. **व्रत**—एकादशी को उपवास कीजिए या केवल दूध तथा फल पर निर्वाह कीजिए।

१२. **जप-माला**—जप-माला को अपने गले में पहनिए अथवा जेब में रखिए। रात्रि में इसे तकिये के नीचे रखिए।

१३. **मौन-व्रत**—नित्यप्रति कुछ घण्टों के लिए मौन-व्रत कीजिए।

१४. **वाणी-संयम**—प्रत्येक परिस्थिति में सत्य बोलिए। थोड़ा बोलिए। मधुर बोलिए।

१५. **अपरिग्रह**—अपनी आवश्यकताओं को कम कीजिए। यदि आपके पास चार कमीजें हैं, तो इनकी संख्या तीन या दो कर दीजिए। सुखी तथा सन्तुष्ट जीवन बिताइए। अनावश्यक चिन्ताएँ त्यागिए। सादा जीवन व्यतीत कीजिए तथा उच्च विचार रखिए।

१६. **हिंसा-परिहार**—कभी भी किसी को चोट न पहुँचाइए **(अहिंसा परमो धर्मः)**। क्रोध को प्रेम, क्षमा तथा दया से नियन्त्रित कीजिए।

१७. **आत्म-निर्भरता**—सेवकों पर निर्भर न रहिए। आत्म-निर्भरता सर्वोत्तम गुण है।

१८. **आध्यात्मिक डायरी**—सोने से पहले दिन-भर की अपनी गलतियों पर विचार कीजिए। आत्म-विश्लेषण कीजिए। दैनिक आध्यात्मिक डायरी तथा आत्म-सुधार रजिस्टर रखिए। भूतकाल की गलतियों का चिन्तन न कीजिए।

१९. **कर्तव्य-पालन**—याद रखिए, मृत्यु हर क्षण आपकी प्रतीक्षा कर रही है। अपने कर्तव्यों का पालन करने में न चूकिए। सदाचारी बनिए।

२०. **ईश-चिन्तन**—प्रातः उठते ही तथा सोने से पहले ईश्वर का चिन्तन कीजिए। ईश्वर को पूर्ण आत्मार्पण कीजिए।

यह समस्त आध्यात्मिक साधनाओं का सार है। इससे आप मोक्ष प्राप्त करेंगे। इन नियमों का दृढ़तापूर्वक पालन करना चाहिए। अपने मन को ढील न दीजिए।

Registrar of Newspapers for India
No. 71610/1999

Postal-Registration No. TRI/005/2021-23

LICENSED TO POST WITHOUT PREPAYMENT
(Licence No. WPP No. 02/21-23, Valid upto: 31-12-2023)
DATE OF PUBLICATION: 20th OF EVERY MONTH
DATE OF POSTING: 20th OF EVERY MONTH
Posted at Shivanandanagar, Tehri-Garhwal, Uttarakhand

मई २०२१

साधक की योग्यता

मछली को पानी से उठा कर किनारे पर रख दिया जाये, तो वह कष्ट से छटपटाने लगती है। पानी में फिर से जाने के लिए वह विकल हो उठती है। किसी लड़के को गंगा के शीतल जल में कुछ देर बिठा कर रखा जाये, तो उसका दम फूलने लगेगा। वह चीखने-चिल्लाने लगेगा और बाहर कूद आने का प्रयास करेगा। किसी के मकान में आग लग गयी हो, तब मकान मालिक तुरन्त नगर पालिका के कार्यालय की ओर दौड़ेगा तथा दमकल लाने और आग बुझाने का प्रयत्न करेगा। यह सारा काम वह तुरन्त करेगा। इसी प्रकार आपमें भी मुक्ति के लिए विकलता और उत्कटता आनी चाहिए।

मन में से यह विचार निकाल देना चाहिए कि कुछ ही महीनों की साधना से मैं योगी बन जाऊँगा। उसके लिए कई वर्षों की सच्ची साधना तथा ब्रह्मचर्य और अहिंसा के पालन की आवश्यकता होती है। विश्वविद्यालय के स्नातक बनने के लिए तथा अल्प धन कमाने के लिए भी कई वर्षों तक कठिन परिश्रम करना होता है, तब योगी बनने तथा अमरत्व प्राप्त करने के लिए कितनी कठिनाई हो सकती है?

हे साधको! दृढ़ निश्चय कीजिए कि मैं अभी भगवान् का साक्षात्कार करूँगा अथवा प्राण त्याग दूँगा।

यह मत कहिए कि 'अगले जन्म में साक्षात्कार कर लूँगा।' ऐसा कहेंगे तो मैं छड़ी से आपकी खबर लूँगा। मैं बहुत अप्रसन्न होऊँगा। आपमें यदि एकमात्र भगवान् की ही सच्ची पिपासा है तथा आप सच्ची और गहन साधना करते हैं, तो अगले क्षण ही आप भगवत्साक्षात्कार कर लेंगे।

—स्वामी शिवानन्द

सेवा में

'द डिवाइन लाइफ ट्रस्ट सोसायटी' की ओर से स्वामी अद्वैतानन्द द्वारा 'योग-वेदान्त फारेस्ट एकाडेमी प्रेस, पो. शिवानन्दनगर, जि. टिहरी-गढ़वाल, उत्तराखण्ड, पिन २४९१९२' से मुद्रित तथा 'द डिवाइन लाइफ सोसायटी मुख्य कार्यालय, पो. शिवानन्दनगर, जि. टिहरी-गढ़वाल, उत्तराखण्ड, पिन २४९१९२' से प्रकाशित। फोन : ०१३५-२४३००४०, २४३११९०
E-mail: generalsecretary@sivanandaonline.org ; Website : www.sivanandaonline.org ; www.dlshq.org
सम्पादक : स्वामी निर्लिप्तानन्द